दादरी 1857

भटनेर की गौरव गाथा

प्रथम भाग



सूफी मो0 यमीन 'दादरवी' तंवर

भटनेर की गौरव गाथा

सूफी मो० यामीन 'दादरवी' तवंर

प्रकाशक
विजय सिंह पथिक शोध संस्थान, उ०प्र०

भटनेर की गौरवगाथा
लेखक : सूफी मो० यामीन 'दादरवी' तंवर

प्रकाशक :
विजय सिंह पथिक शोध संस्थान, उ०प्र०
एच-248, अल्फा-II, ग्रेटर नोएडा (गौतमबुद्धनगर)

प्रथम संस्करण-2007

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक :
गाजियाबाद ऑफसेट प्रेस
133, ईस्ट मॉडल टाउन, तहसील रोड, गाजियाबाद।

BHATNER KI GOURAV GATHA
By : Sufi Moh. Yameen 'Dadarvi' Tanwar

दो शब्द

यामीन 'दादरवी' एक ऐसी शख्सियत के धनी हैं जिसने मुझे हमेशा प्रभावित किया है। जब पहली बार मैने इनके गजल, गीत और नज्म सुने तो लगा कि जैसे मेरा साक्षात्कार कबीर के लघु संस्करण से हो गया है। मैं यामीन जी को कबीर के बराबर कहने की जुर्रत तो नहीं कर सकता पर उनका साया जरूर कह सकता हूं।

यामीन 'दादरवी' के पास किसी विद्यालय या महाविद्यालय की डिग्री नहीं है। ये समाज के निम्न आय वर्ग से आते हैं और फुटपाथ पर करोबार करके गुजारा करते हैं। कम शिक्षा और आर्थिक विपन्नता के बावजूद इनके विचारों में जो प्रखरता और इनकी लेखनी में जो धार है वह यह सोचने को मजबूर करती है कि यदि इस शख्स को उचित अवसर मिलता तो यह बहुत आगे तक जाने की क्षमता रखता है।

यामीन जी ने जब अपनी इस पुस्तक की पांडुलिपि मुझे दिखाई तो मुझे लगा कि इस पुस्तक को जल्द प्रकाशित होकर जनता के हाथों में जाना चाहिए। मैंने इस पुस्तक को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी ले ली। शीघ्र ही एक ऐसे महापुरूष भी मिल गये जिन्होंने प्रकाशन का सारा खर्चा देना स्वीकार कर लिया। लेकिन साथ ही यह शर्त भी लगा दी कि उनका यह सहयोग गुप्त रखा जाय। मैं हृदय से उनका आभार व्यक्त करता हूं।

प्रस्तुत पुस्तक कोई इतिहास की पुस्तक नहीं है और इसमें दी गई घटनाओं, तिथियों, नामों व अन्य तथ्यों के प्रमाण के बारे में हमारा कोई दावा नहीं है। यह पुस्तक यामीन जी ने बुजुर्गों से सुनी हुई बातों के आधार पर अपनी भाषा की कड़ियों में प्रस्तुत की है। इतना दावा है कि इसमें वर्णित ज्यादातर घटनाएं सच हैं और इससे १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में दादरी क्षेत्र के योगदान को समझने में बहुत सहायता मिलेगी। आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभेच्छु
राजकुमार भाटी

786

समर्पण

मेरे पूज्य दादा करीम बख्श जी को जिन्होंने १८५७ के महान क्रांतिकारियों की मातृभूमि के लिए दी गई कुर्बानियों की पावन स्मृतियां बचपन में ही मेरे मानस पटल पर अंकित कर दी थी–आज मैं उन्हें अपने देशवासियों की नजर कर रहा हूँ–मेरी कम अकली की वजह से इनमें जो भूल चूक रह गई है इसके लिए मुझे माफ कर देना–मैं उन्हें दूसरे भाग में दुरुस्त करने की कोशिश करूंगा–

आपका अनुज

सूफी मो. यामीन दादरवी 'तंवर'

किदवई नगर 'दादरी'

(गौ.बु.नगर) यू.पी. भारत

ऐ वतन

ऐ वतन ऐ वतन हम तेरे नगमा जन
तुझ पे कुर्बान हैं अपनी जान और तन
ऐ वतन ऐ वतन.....
तुझमें दीनों धर्म तुझमें ईमान है
तुझमें गीता भी है तुझमें कुरान है
तुझको जन्नत बनाए हैं अपनी लगन
ऐ वतन ऐ वतन.....
तेरे खेतों में छाई है हरियालियां
फूलों फल से भरी हैं सभी डालियां
लहलहाने लगे हैं सभी बागो वन
ऐ वतन ऐ वतन.....
तेरी शहजादियां यह हसीं वादियां
ऊंचे पर्वत तेरी अजमतों के निशां
तेरी गोदी में बहती है गंगो जमन
ऐ वतन ऐ वतन....
मिल रहे हैं नई मंजिलों के निशां
हर तरफ बढ़ रहे हैं तेरे कारवां
तू तरक्की की राहों पे हैं गामजन
ऐ वतन ऐ वतन...
कितना प्यारा तेरा नाम हिन्दुस्तां
तेरे दामन में आबाद सारा जहां
शोखियां मस्तियां दिलबरी बांकपन
ऐ वतन ऐ वतन....
हम रहें न रहें तू सलामत रहे
तेरी अजमत यूंही ता कयामत रहे

प्यार का आईना हुस्न का पैरहन
ऐ वतन ऐ वतन....
तेरा परचम जमाने में यकता रहे
सब से आगे रहे सब से ऊंचा रहे
तुझसे सीखे जहां एकता का चलन
ऐ वतन ऐ वतन हम तेरे नगमा जन
तुझपे कुर्बान हैं अपनी जान और तन
ऐ वतन ए वतन

(यामीन दादरवी)

'काले कुत्ते'

मैं भी आजादी का जश्न मनाता
परचम लहराता
फिर गीत खुशी के गाता
लेकिन इस बरबादी को
मैं आजादी कैसे मानू
क्योंकि यह आजादी सिर्फ दिखावा है
मजलूमों के हक पर छिप कर धावा है
आज भी हिन्दुस्तानी भूखे नंगे हैं
आज भी जाति और धर्म के दंगे हैं
आज करोड़ों हिन्दुस्तानी बेघर हैं
आज करोड़ों हिन्दुस्तानी अनपढ़ हैं
जहां भी देखो वहीं पे डाका-चोरी है
दफ्तर-दफ्तर आज भी रिश्वतखोरी है
आज भी जिन्दा नार जलाई जाती है
आज भी देश की दौलत बाहर जाती है
अंधा है कानून अदालत सोती है
लुटपिट कर इंसाफ की देवी रोती है
जंगल से भी बदतर अब आबादी है

क्या इसका ही नाम कहो आजादी है?
अंग्रेजों ने काले कुत्ते पाले थे
वो ही उनकी सत्ता के रखवाले थे
एक दिन गोरे हिन्दुस्तां को छोड़ गए
लेकिन कुत्तों की जंजीरें तोड़ गए
आका चले गए कुत्ते आजाद हुए
हिन्दुस्तानी तब ज्यादा बरबाद हुए
कुत्तों ने सब भाषाएं जख्मी कर दी
कुत्तों ने मर्यादाएं जख्मी कर दीं
कुत्तों ने सब आशाएं जख्मी कर दीं
इन कुत्तों से देश को मुक्त कराना है
फिर से आजादी का बिगुल बजाना है
आजादी के भेस में अब अय्यारी है
इसीलिए तो जंग अभी भी जारी है
देश में जब कोई भूखा नंगा न हो
जाति 'भाषा' मजहब का दंगा न हो
भेदभाव न हो सब को इंसाफ मिले
ऊंच नीच से देश हमारा साफ मिले
तब मैं आजादी का जश्न मनाऊंगा
तब परचम आजादी का लहराऊंगा
तब भइया मैं गीत खुशी के गाऊंगा

वह बात जिसका जमाने में कोई जिक्र नहीं

गदर की कहानी मैंने अपने दादा करीम बख्श जी से सुनी थी। तब यह कहानी मुझे परी कहानियां जैसी लगती थी। उमर के साथ जैसे जैसे मेरी सोच बढ़ती गई मैं भी तरह तरह के सवाल करके दादाजी से इस कहानी को कई बार सुनता रहता–उन्होंने जब मुझे अपने पूर्वजों के नाम लिखवाए तो यह कहानी मेरे दिलो दिमाग में जमकर रह गई। १६६६ में जब दादाजी का देहांत हो गया तब मैं १६ वर्ष का था।

लेकिन १८५७ गदर की कहानी जिसे 'वह बेहदे की साल' का नाम देते थे उसे सुनने और समझने की मेरी प्यास और बढ़ गई थी। मैं अक्सर और बुजर्गो से मालूम करता, जोकि उमर में उनसे कम थे तो कहते कि हमें इस बारे में ज्यादा मालूम नहीं था।

नेरे तलवारबाजी के उस्ताद खलीफा मौ. इसमाईल खां साहब ने अपने दादा के परदादा चान्द खां वाला वाकया सुनाया कि उन्होंने राव साहब की कचहरी में तलवार का करतब दिखाते हुए एक ही वार में उड़ते हुए भंवरे को बराबर दो हिस्सों में काट दिया था–इस पर उन्हें वही तलवार इनाम में दे दी गई थी। पीढ़ियों से चली आ रही वह तलवार खलीफाजी ने मुझे भी दिखाई थी, जो अपनी उमर के आखरी दिनों में उन्होंने मुझे दे दी थी। बुजुर्गों की अमानत और निशानी के तौर पर वह तलवार आज भी मेरे पास है।

स्मृतियों की संवत और तिथियां न हो तो वह भी पुरानी कहानियों में ही शुमार होने लगती है। दस्तावेज या इतिहास नहीं कही जाती। १८५७ की घटनाओं को मैने इतिहास की किताबों में तलाशा तो उनमें सिर्फ बहादुर शाह जफर या झांसी की रानी या ऐसी ही चन्द रियासतों के चर्चे थे। उनके बारे में यह ही मकसद निकलता था कि सभी अपनी अपनी रियासतों के लिए ही अंग्रेजों से लड़े थे। जैसे हमेशा से रियासतें आपस में लड़ती आई है। २० या २२ वर्ष की उमर में मैंने बहादुर शाह जफर की जीवनी पर एक उपन्यास 'बहादुर शाह जफर का अफसानाएं गम' पढ़ा था उसमें चर्बी लगे कारतूसों की चर्चा की गई थी। इस वजह से मेरी १८५७ की कहानी को जानने की तलब और बढ़ती रही।

अगर इतिहास की किताबों में पढ़ाई गई बातों का निष्कर्ष सच है तो मेरे बुजुर्ग भी मुझसे झुठ नहीं कहते थे कि अंग्रेजों ने आम जनता के लोगों को भी गांवों से पकड़ पकड़ कर पेड़ों पर फांसियां दे दी थी। इसी सच्चाई को जानने की जुस्तजूं में

मुझे कई ऐसे तथ्य भी मिले जिनसे मुझे यकीन सा होने लगा कि भारत में १८५७ की घटनाओं को अक्सर जान बूझकर छुपाया गया है।

क्योंकि १८५७ में गदर हिन्दुस्तान में हुआ था। और भू चाल यूरोप में आया। वहां के सभी अखबारों में यहां कि घटनाएं रोज छपती थी। और उनमें इंडिया राज की नीतियों और व्यवस्थाओं की आलोचनाएं भी की जाती थीं। जिसकी वजह से २ अगस्त १८५८ में भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटेन की राज शाही ने अपने हाथ में ले लिया था। १८५७ में गदर की कहानी पर मैं जितनी खोज करता रहा हर बार नई बातें मेरे सामने आती रही। यह कहानी मेरे जहन और सोच! फिक्र में इस कदर उतर गई कि मैंने अपनी शुरूआती शायरी में भी अन्याय के खिलाफ ही लिखा। जबकि मेरी उस वक्त उमर रोमानी और आशिकाना शायरी लिखने की थी।

१६७० में तब बंगलादेश मुक्ति आंदोलन चल रहा था। 'मुजीबर्रहमान को पाकिस्तानी हुकुमत ने गिरफ्तार कर लिया तब मैंने एक नजम कही थी उसका एक शेर मुझे अब भी याद है कि

अगर इक बाल भी बाका हुआ गर बंग बंधु का
कसम खाते हैं लिख देंगे तेरी किस्मत में बरबादी

हां तो मैं बात कर रहा था १८५७ के गदर की जिसे दबाने में अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानी जनता पर इस कदर जुल्म किए थे कि यूरोप के बुद्धि जीवों ने भी इसकी काफी आलोचनाएं की थीं। यहां तक कि कार्ल मार्क्स और लेनिन ने भी अपने आंदोलनों में खास तौर से गदर के वाक्या को दोहराया था। तो फिर हिन्दुस्तान में और वह भी आजाद हिन्दुस्तान में चर्बी लगे कारतूसों या चन्द रजवाड़ों की अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावत बताकर उन हालात के असल पहलुओं को आम हिन्दुस्तानियों से क्यों छुपाया गया?

उस वक्त के हालात पर और उस क्रांति की लड़ाई में हिस्सा लेने वालों के पेशे पर गौर किया जाए तो मालूम होता है कि उनमें गुर्जर, जाट, राजपूत और मुसलमान व अन्य वही लोग शामिल थे जो खेती किसानी से जुड़े हुए थे। बल्कि गुर्जर तो वह भी इस लड़ाई में शामिल थे जो कि अंग्रेजी सरकार की नौकरियों में थे। इसके दूसरी तरफ किसान का शोषण करता वर्ग जमींदार और महाजन पूरे तौर से अंग्रेजों के साथ था। इसी तरह काफी तादाद में रजवाड़े भी अंग्रेजों के साथ ही नहीं उनकी तरफ से लड़ भी रहे थे। उस वक्त के अनेक लेखक इतिहासकार व साहित्यकार भी अंग्रेजों के साथ थे। १८८२ में बंकिम चन्द चट्टोपाध्याय द्वारा लिखा गया उपन्यास 'आनंद मठ' जिसे आज देश भक्ति का प्रमाण दिया जाता है। उसका समापन इन शब्दों में होता है कि–

अंग्रेज जब तक शासक नहीं बनेंगे तब तक सनातन मूल्यों की बहाली की कोई संभावना नहीं प्रजा (हिन्दू) अंग्रेजी राज में सुखी रहेगी-वह बिना किसी परेशानी के अपने मूल्यों पर अमल कर पाएगी-

'आनंद मठ' की इन पंक्तियों से तो साफ तौर से नहीं जाहिर होता है कि जिन लोगों ने अंग्रेजी राज के विरोध में हिस्सा लिया था वह लोग सनातन धर्म के भी दोषी थे। क्या ऐसे ही लेखों से प्रेरणा लेकर महात्मा गांधी की हत्या की गई थी?

आनंद मठ उपन्यास में एक गीत 'वंदे मातरम' भी प्रकाशित हुआ था। जिसे अंग्रेजों ने पहले विश्व युद्ध में अपनी सेना की बंगाली रेजीमेंट को खुली छूट दे रखी थी कि जब वह जर्मन फौज के मोर्चे पर हमला करें तो वंदे मातरम् का नारा लगा सकते हैं।

(अमर उजाला २४/८/०६)

मौजूदा वक्त में इसी गीत को राष्ट्रीय गीत बनाने पर विवाद होता रहता है। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि जब देश की राष्ट्रीय भाषा हिन्दी है तो फिर राष्ट्रीय गीत भी हिन्दी में ही होना चाहिए या फिर यह कहा जाए कि हिन्दी भाषा अब तक कोई ऐसा विद्वान पैदा न कर सकी जो राष्ट्र को यह हिन्दी गीत दे देता।

यह भी एक खुली सच्चाई है कि भारत माता की मूर्ति बनाकर उसकी वंदना गा लेने भर से ही भारत देश खुशहाल नहीं होने वाला–हालांकि मूर्ति उन्हीं की बनाई जाती है जो निराकार में लीन हो जाते हैं।

जबकि भारत माता या भारत देश तो सभी के सामने साकार रूप में मौजूद है। जरूरत इसकी मूर्ति बनाकर वंदना कर लेने भर की नहीं बल्कि साकार रूप में मौजूद भारत देश की हिफाजत करने और इसे खुशहाल बनाने की है।

भारत माता के सच्चे सपूतों ने एक सदी अंग्रेजों से टक्कर लेकर अपनी जाने कुर्बान करके उसे आजादी दिलाई, क्या आज भारत माता के सच्चे सपूत कहलाने का दम भरने वालों के लिए यह शर्म की बात नहीं कि भारत माता का किसान आज भी कर्ज और भूख से तंग आकर आत्म हत्याएं कर रहा है जबकि किसान को अन्दाता कहा जाता है।

इस बात पर विचार करने की किसे फुर्सत है कि जो हिन्दुस्तानी एक सदी तक अंग्रेजों के साथ मिलकर आजादी के आंदोलन को बराबर कुचलते रहे अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद आजाद भारत में वह लोग कहां चले गए किस रूप में हैं और क्या कर रहे हैं?अगर इस बारे में लापरवाही की जाती रही तो–

जो पानी अब गर्दन तक है वह सर तक आ जाऐगा
हम कितने आजाद हैं भइया यह तो वक्त बताएगा।।

दादरी १८५७ आजादी की जंग के मुताल्लिक बचपन से अब तक जो कुछ जानकारी जिनसे मुझे हासिल हुई। उन बुजुर्गों, किताबों, 'अखबारों और जिन दोस्तों से मुझे यह सामग्री मिलीं और उनके लेखकों आदि और जिनके सहयोग से यह आप तक पहुंच रही है इन सभी का आभार व्यक्त करते हुए 'दादरी १८५७' की स्मृतियां इस उम्मीद से आप के सम्मुख पेश कर रहा हूँ कि देश के जिन वीर क्रांतिकारियों ने आजादी की खातिर अपनी जानें कुर्बान की थी हम हर गांव और शहर में उनकी यादगार बनवाएंगे और उनसे प्रेरणा लेकर देश की आजादी की हिफाजत करेंगे दूसरा भाग भी जल्दी पेश करने का वादा करते हुए अबकी बार यहीं तक।

जय हिन्द
२०.६.०६
सूफी मौ. यामीन दादरवी 'तंवर'
किदवई नगर दादरी (गो.बु.नगर)
उ.प्र. भारत २०३२०७

जंगे आजादी का पावन तीर्थ दादरी

दिल्ली से २३ मील अलीगढ़ रोड पर बसा दादरी कस्बा देखने में हिन्दुस्तान के दीगर कस्बों से आज भी बदतर नजर आता है। जगह–जगह जाम, गंदे पानी से भरी हुई टूटी–फूटी सड़कें, जगह जगह गंदगी और कूडों के ढेर और उन कूडों के ढेरों में छोटे–छोटे बच्चे कुछ ढूढ़ते हुए, शायद कोई चीज उनके लिए रोटी बन जाए।

साठ साल की आजादी के बाद भी आज ये हालात हैं। यह उस दादरी के जिसने ६० साल तक भटनेर की आजाद रियासत की राजधानी के रूप में अंग्रेजों से बराबर टक्कर ली है। जबकि १८५८ में ही अंग्रेजों ने तोपों के गोले बरसा कर इसे उजाड़ दिया। यहां की कोर्ट कचहरी भी खंडहर बना दी गई थी।

आज दादरी में रहने वाला या बाहर से आने वाला तो सिर्फ यह जानता है कि दादरी गंदगी से भरा हुआ एक कस्बा है जहां जीने की कोई सहूलियत न होकर भी लोग जिन्दा है।

किसी को क्या खबर कि यह छोटा सा कस्बा दादरी अपनी माटी में १८५७ से १९४७ तक की जंगे आजादी का गौरवशाली इतिहास छुपाए खामोशी से उन उजले पोश देश भक्तों पर आंसु बहा रहा है जो अपनी देशभक्ति की बड़ी–बड़ी डींगे हांकते

हैं और करते कुछ नहीं।

आज किसी को क्या खबर कि १८५७ में अपनी आजादी का ऐलान करने वाली भटनेर रियासत की राजधानी थी दादरी—यहां के वीरक्रांतिकारियों ने जब १८५७ में अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से बाहर निकालने के लिए अपने सरों पर कफन बांध लिया था तो उनके बाद की पीढ़ियों ने भी उस कफन की लाज निभाई और अंग्रेजों को अपनी मौजूदगी का बराबर अहसास दिलाकर टक्कर देते रहे—अंग्रेजी सरकार के पास ऐसा कोई जुर्म नहीं बचा जिसे उसने भटनेर के वीरक्रांतिकारियों पर इस्तेमाल न किया हो। गोली मारकर शहीद कर देना पेड़ों पर फांसी लगाना या लाठियां बरसा कर मार डालना तो आम तरह से मामूली बात थी। लेकिन दीगर लोगों पर भी अपनी दहशत बिठाने के लिए अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों को शहीद करने या मार डालने के और भी अनेक तरीके अपना रखे थे।

क्रांतिकारियों की मुशकें बांध कर हाथियों की दांए उनके ऊपर चलाकर मार डालना या चूने की चक्कियों में पीस देना। यहां तक कि अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों को गोलियों से शहीद करने के बाद गांव वालों को उनकी लाशों पर थूकने पर मजबूर किया फिर उतने ही कुत्ते मारकर उनके साध एक ही गड़े से सब को दफनाया जाता।

लेकिन आजादी के चाहने वाले भी अपनी मिसाल आप थे। अंग्रेजों का एक से बढ़कर एक नया जुल्म उन्हें आजादी की राह से न हटा सका। पीढ़ियां बदलती रहीं लेकिन राह न बदली। जाँबाज क्रांतिकारियों को सिर्फ एक ही तलब थी आजादी 'सिर्फ' आजादी। अंग्रेजों ने दादरी भटनेर का इलाका बद अमनी और गैर महफूज घोषित कर रखा था। क्योंकि भटनेर के वीर क्रांतिकारी आजादी के मतवाले छापा मार तरीका अपना कर आजादी की जंग जारी रखे हुए थे। जिसकी वजह से अंग्रेज भी बगैर किसी भारी बंदोबस्त के इस इलाकों से गुजरते हुए दहशत मानते थे। कहते हैं कि दादरी के पास के ही एक गांव 'नलगड़ा' में जंगे आजादी के अमर शहीद सरदार भगत सिंह ने अपने साथियों के साथ मिलकर दिल्ली की असेम्बली में चलाने के लिए बम बनाए थे। इस तरह यह बात साफ तौर से कही जा सकती है कि दादरी भटनेर का इलाका जंगे आजादी जो ९० साल तक अंग्रेजों से लड़ी गई उसके ग़रम दल के जाँबाज क्रांतिकारियों का गढ़ थी और १८५७ से १९४७ तक इस इलाके ने देश आजाद होने तक बराबर आजादी की जंग जारी रखी मगर अफसोस की बात यह है कि ९० साल तक अंग्रेजों से आजादी की बराबर जंग जारी रखकर हर तरह की कुर्बानियां पेश करने वाली भटनेर की राजधानी दादरी में आजादी के साठ साल बीत जाने के बाद भी ऐसी कोई भी पहचान अभी तक यहां कायम नहीं हो सकी है जिससे यह जाहिर हो कि ९० साल तक बराबर देश की आजादी के लिए दी गई कुर्बानियों की

याद में दादरी को कोई मान सम्मान दिया गया हो।

अगर हमारे दिल में जरा भी देशभक्ति की भावना है और उन वीर क्रांतिकारियों की कुर्बानियों का सम्मान है। जिन की वजह से आज हमारा देश आजाद हुआ—तो हमारा भी यह फर्ज बनता है कि उन शहीदों के सम्मान में दादरी में एक ऐसा आजादी का मंदिर बनवाएं जिस की दीवारों और क्रांतिकारियों को अंग्रेजी फौज और सरकार से लोहा लेते हुए तस्वीरों में दर्शाया जाए ताकि दादरी में आने वाले हर शख्स को उसके दर्शन से ९० साल तक लड़ते रहे वीरों का इतिहास मालूम हो और हर आदमी देश भक्ति की भावनाओं का पावन आदर्श अपने दिल में लेकर यहां से जाए।

क्योंकि देश भक्ति से बड़ी कोई और बड़ी भक्ति नहीं, न कोइ तीर्थ इससे बड़ा होता है। और दादरी ऐसा ही तीर्थ है। फिर भी हम इसे भूले हुए हैं।

जब दादरी बसाई गई

दादरी जोकि मौजूदा वक्त में जि. गौतमबुद्ध नगर की मुख्य तहसील है। किसी जमाने में यहां हरे भरे जंगल नुमा वन थे। मैंने बुजुर्गों से सुना था कि यहां शेर आदि खूंखार जानवर भी रहते थे। और एक तरह से यह जंगल राजा महाराजाओं की शिकार गाह थी।

गुप्त काल में कोट गांव आबाद था। जिसे गुप्त राजा समुन्द्र गुप्त ने पराजित करके खंडहर बना दिया था। बाद में सिकंन्दर लोधी ने सिकन्द्राबाद बसाया। दिल्ली तंवर राजपूतों ने बसाई थी। इससे पहले बुलन्दशहर 'अनूपशहर' दनकौर आदि आबाद थे। बादशाह तुगलक के वक्त में सय्यद महमूद रूही बर्का पोश और सय्यद हसन ने जारचा आबाद किया था। कासना भी किसी और नाम से छोटा सा गांव था। जिसे अलाउद्दीन खिलजी के वक्त में यहां जेसलमेर के राजा रनबीर सिंह के तीन बेटे अपने पांच हजार बिरादरान फौजियों के साथ आए थे। उन्होंने इस इलाके पर कब्जा करके किला आदि बनवाए और बड़ा भाई कांसल सिंह के नाम पर 'कासना' नाम रखा था। बाद में कांसल सिंह ने इस्लाम धर्म अपना लिया था। इन्हीं तीनों भाइयों और इनके साथ आए पांच हजार साथियों के वंशजों ने जंगलों को काट कर खेती करनी शुरू की। तिल बेगमपुर 'कलौंदा' घोड़ी बछेड़ा, आम का, धौम, बड़पुड़ा, कठेहडा, चिठेहड़ा आदि गांव आबाद किए।

शहनशाह अकबर ने जब चित्तौड़ पर कब्जा किया तो महाराणा प्रताप सिंह वहां से बचकर जंगलों में छुप गए थे। कहते हैं कि उन्हीं सब लोगों ने साठा चौरासी

आबाद किया। यह भी कहते हैं कि चित्तौड़ को गवां देने के बाद अकबर की फौज से जंगलों में छिपे रहने पर महाराणा प्रताप को घास की रोटियां खानी पड़ी। वह जगल यही थे। तब दादरी आबाद नहीं थी।

वक्त बदला। मुगलों की शाहंशाही कहलवाने वाली हुकूमत भी औरंगजेब की मृत्यु के बाद आपसी खींचातानी में सूखे पत्तों की तरह बिखरने लगी थी। रही सही कसर ईरान के बादशाह नादिरशाह ने पूरी कर दी। दिल्ली में कई दिनों तक कत्ले आम लूटमार कराके दिल्ली के किले के तमाम माल व खजाने को अपने साथ ईरान ले गया। वह दिल्ली व आसपास के कारीगरों व दस्तकारों को भी ईरान ले गया यानी दिल्ली को हर तरह से बरबाद कर गया। बहुत से दिल्लीवासी भी दीगर शहरों में जा बसे थे। मराठे जो कि हिन्दुस्तान के शहशांह बनने के लिए दिल्ली का तख्त हासिल करने के ख्वाब अपनी आंखों में बसाए दिल्ली की तरफ बढ़े चले आ रहे थे जब तक वह आए यहां वह कुछ भी नहीं था। उन्हें एक उजड़ी हुई दिल्ली मिली। जिसे हासिल करने के जुनून ने अपनी ताकत बनाने के लिए वह जहां–जहां से गुजरे थे उन इलाकों को उन्होंने खूब लूटा था। जिसकी वजह से जनता में भी उनकी छवी लुटेरों से ज्यादा कुछ नहीं थी। यह विदेशी हमलावर तो थे नहीं कि जनता उन्हें मजबूरी में अपना शाहंशाह मान लेती। इस वक्त मराठों की हालत ऐसी थी कि 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम' एक तरफ तो मराठों की छवी भी हमलावरों जैसी ही बन चुकी थी दूसरी बात दिल्ली में भी ऐसा कुछ नहीं था जो उनकी छवी को संवार सके। हालांकि दिल्ली पर कब्जा करने के लिए उन्हें किसी भारी विरोध का भी सामना न करना पड़ा था। उस वक्त की दिल्ली तो खुद पहले ही मरी पड़ी थी अब तो उसे जिंदा करने की जरूरत थी। अब मराठे भी बेबस थे। दिल्ली के तख्त पर बैठ जाने से उन पर और भी बड़ी जिम्मेदारियां आती थी।

मराठे छापामार लड़ाई के माहिर थे। और तख्त पर बैठकर वही हुकूमत कर सकता है जो हर तरह की लड़ाई लड़ने का माहिर हो और खासतौर से आमने सामने की मैदानी लड़ाई का। मराठे छापामारी करके रजवाड़ों को परेशान करके उनसे ऐसा न करने की शर्त पर भारी भरकम रकम वसूल लेते थे। इस तरह के लौग तख्त पर बैठ कर हकूमत नहीं चला सकते इसलिए दिल्ली पर कब्जा करने के बाद उनके लिए यही बहतर था कि तख्त पर मुगल बादशह को ही रहने दिया जाए और दिल्ली की हिफाजत के बदले में बादशाह से १३ लाख रुपये सालाना लेने लगे यानी उस बादशाह के किराए के फौजी बन गए जिसके लिए कहा जाता था कि

शाह आलम दिल्ली ना पालम

इस तरह भी दिल्ली को थोडी सी शांति मिली तो दिल्ली में कुछ हलचल शुरू

हुई कुछ खुशहाली दिखाई देनी शुरू हुई तभी ईरान में नादिरशह की मृत्यू के बाद अफगानिस्तान के गवरनर अहमदशह ने अपनी आजादी का ऐलान कर दिया क्योंकि उसे अब ईरान से कोई खतरा नहीं था और उसने अपनी हकूमत को ताकतवर बनाने के लिए दिल्ली पर हमला कर दिया। दिल्ली के बादशाह की फौज तो मराठे ही थे जो आमने सामने की लड़ाई के माहिर नहीं थे और पानी पत के मैदान में अहमद शाह के सामने पहली लड़ाई में ही मैदान छौड़ गए क्योंकि मराठों ने अपनी फौज में किसी गैर मराठे को भरती नहीं किया था इस लिए मुकामी जनता की भी उनके ाथ कोई हिमायत नहीं थी। दिल्ली पर अहमद शाह का कब्जा हो गया और वह दिल्ली से भी और आगे तक बढ़ता चला आया। इस लड़ाई में अहमदशाह का साथ एक रूहेला सरदार नजीबुद्दौला भी बराबर दे रहा था। इसी वजह से अहमदशाह अफगानिस्तान जाते वक्त शाह आलम के यहां नजीबुद्दौला को अपनी तरफ से मीरमुंशी कायम करता गया।

नजीबुद्दौला बहुत ही तेज तर्रार दिमाग रखता था। वह सियासत और लड़ाई का भी माहिर था। मराठों के हारने की वजूहात पर गौर करते हुए उसने दिल्ली की हिफाजत के लिए आसपास के लोगों को भी शामिल रखने के मद्देनजर बल्लभबगढ़ और कुचेसर के जाटों को राव की पदवी और कुछ गांवों की अमलदारी भी बादशाह से दिलवाई। इसी तरह उसे भटनेर में भी गूजरों को दिल्ली की हिफाजत के लिए एक नई ताकत के रूप में तैयार करने के लिए गांव कठेड़ा के गूजर चौधरी शंकर सिंह के बेटे दरगाही सिंह को राव की पदवी और १३३ गांवों की अमलदारी भी बादशाह की मुहर लगी सनद के साथ दिलवाई। यह करीबन १७६५ की बात है तब कठेड़ा, चिठेड़ा, बढपुरा, आम का के बीच कोई आबादी नहीं थी। राव दरगही सिंह ने भटनेर की राजधानी के रूप में दादरी का निर्माण कराया।

यहां एक ऊंचा टीला बनवाकर उस पर एक छोटी किलेनुमा कचहरी बनवाई। उसी में एक तरफ अपनी रिहाइश गाह भी बनवाई। उसके चारों तरफ दूर दूर से बुला बुला कर सभी तरह के दस्तकार, कारीगर व अनेक कोमें भी बसाईं। सरायं बाजार मंदिर व मस्जिद भी बनवाईं।

राव दरगाही सिंह सभी तरह के हिन्दु 'मुस्लिम त्यौहारों में बराबर हिस्सा लेते और खुद भी अपने यहां सभी त्यौहार मनाते और सभी को शामिल करते दरगाही सिंह ने ही दादरी में राम लीला, कृष्ण लीला, चैते आठे बूढ़ा बाबू आदि मेलों की शुरूआत भी कराई। कसबा जारचा में मोहर्रम मनाया जाता था। राव साहब ने दादरी में भी मोहर्रम की शुरूआत कराई। यहां तक कि नवीं और दसवीं तारीख मोहर्रम को कचहरी भी गोया इमाम बाड़ा बन जाती थी। गश्त करते वक्त जुलूस के

अखाडे कचहरी के मैदान में जाकर खेल दिखाते। सभी कां राव साहब इनाम देकर हौसला बढ़ाते। करतब दिखाने वाले को खास इनाम भी दिया जाता। अब यह सब गुजरे जमाने की बातें हैं। जो बुजुर्ग अपने पूर्वजों से सुनी इन बातों को बताया करते थे, वह भी इस दुनिया से चले गए हैं।

१८५७ ई. में राव दरगाही सिंह के बेटे व पोतों ने अंग्रेजी सरकार के खिलाफ क्रांति की लड़ाई में हिस्सा लिया था। क्रांति असफल हो जाने के बाद २० सितंबर १८५८ में अंग्रेजी फौज ने दादरी पर हमला करके दादरी और आसपास के गांवों में आग लगा दी। मुकाबले में कितने ही क्रांतिकारी मारे गए और कितनों को अंग्रेजों ने फांसी दे दीं। राव दरगाही सिंह की कचहरी तोपों के गोलों से गिरा दी गई। बाद में कचहरी के किसी कमरे को दुरूस्त करके उसमें थाना कायम करा दिया था। मोहर्रम के जुलूस को कचहरी में थानेदार आदि पैसा ही अहतराम करते हुए खिलाडियों को इनाम भी देते रहे। बाद में थाना दूसरी जगह बदला गया तो मोहर्रम का जुलूस भी थाने से जुड़ा रहा।

तमाम भारत में दादरी की यह बहुमूल्य मिसाल है कि इस तरह की भीड़भाड़ वाले जुलूस पुलिस प्रशासन के लिए भागदौड़ और अमल कायम रखने के मामले में सर दर्द से बन जाते है। जबकि दादरी में ठीक जुलूस वाले दिन थाना इंचार्ज दीगर अफसरान व एम.पी. एम.एल.ए. व चेयरमैन आदि थाने में कुर्सियां और मूढ़ों पर बैठकर बहुत ही सुकून के साथ खिलाड़ियों के करतब देखते हैं और रस्मन इनाम भी देते हैं। यह बेहद फख्र की बात है कि दादरी कस्बे को राव दरगाही सिंह ने भाईचारे का ऐसा तोहफा दिया है जो अपनी खुद मिसाल है।

राव दरगाही सिंह की कचहरी

राव दरगाही सिंह का निजाम ए सलतनत दूसरे जागीरदारों और सामन्तों से बिल्कुल अलग तरह का था। वह जनता से सिर्फ उतना ही लगान वसूलते थे। जितना दिल्ली के बादशाह को देना तय था। उनके अपने परिवार के खर्च के लिये अपनी ही जमीन काफी थी। सभी कौमों में अपने अपने चौधरी चुने गये थे। वह अपनी अपनी कौमों के विवाद खुद निपटा लेते थे। भूख प्यास में एक दूसरे की मदद सभी आपस में करते थे। जिसे अनाज की जरूरत होती उसे अनाज मिल जाता। जिसे दूध की जरूरत होती उसे दूध घी मिल जाता। पड़ोसी खुद आकर कह जाया करते थे कि बच्चों को भूखा मत रखियो। अनाज हमारे यहां से ले आ। दूध, घी, छाछ, नियार, फूंस के लिये भी पड़ोसी खुद कह दिया करते थे। इस तरह किसी को किसी भी तरह की चोरी चकारी का भी डर नहीं था। ज्यादातर मकानों में किवाड़ ही नहीं थे तो ताला ही कौन लगाता। कुत्ते बिल्ली से बचाव के लिये खिड़का ही काफी होतें थे। जंगली जानवरों से बचाव के लिये एक लाठी ही साथ लेकर कोई भी शख्स किसी भी वक्त कहीं भी आ जा सकता था। जब कोई भूखा ही नहीं रहता तो चोरी कौन करता। शादी विवाह के विवाद चौधरी निपटा लेते थे। तो कचहरी में कौन मुकदमा लेकर जाता। कोई दूसरे इलाके से आकर रहने लगता तो उसकी हर तरह से मदद करके उसे बसाया जाता। कोई छोटी मोटी खता करता तो उसे मार कर भगा दिया जाता। कोई फांसी जैसी खता करता तो राव जी के हुक्म से उसे मिर्चो का तोबड़ा चढ़ा दिया जाता था। जबकि ऐसी बात कभी दस पांच साल में ही होती थी।

इस तरह राव दरगाही सिंह जी की कचहरी में मुकदमें न आकर उनसे मिलने आने वालों से ही कचहरी में रोनक रहती थी। दूर दूर से लोग मिलने आया करते थे। दूर दूर से कलाकार व गायकों की मडंलियां महीनों के लिये दादरी में आकर अपनी अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। कभी निहालदे गाने वाले महीनों रोनक करते, कभी आलाह गाने वाले, कभी नल दमयंती गायी जाती, कभी हीर रांझा तो कभी पृथ्वी राज रासो गाने वाले कभी रामलीला तो कभी रासलीला, कभी कथा वाचक आकर कथा बांचते थे। कभी पूरनमल का सांग, कभी रूप बसंत, कभी ढोला मारू कभी नरसी का भात गाने वाले अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। हर रात दादरी में ऐसा ही माहौल रहता। दो–दो चार–चार कोस के गांवों के लोग भी इस माहौल में शामिल होकर इसकी रोनक में चार चांद लगा देते थे। राव साहब खुद

इस माहौल में घुले मिले रहते थे। वे न किसी के राजा थे न कोई उनकी प्रजा, बल्कि वे क़िसी के भाई थे तो किसी के बेटे, किसी के ताऊ, किसी के चाचा, किसी के दादा थे। उन्हें राव साहब या राजा जी तो सिर्फ दूसरे इलाके से आने वाले लोग ही कहते थे। दादरी इलाके के रहने वाले सभी लोग एक ही कुनबे कबीले की तरह मिलजुल कर रहते थे। खेत खलियान का काम भी सभी मिलजुल कर कर लेते थे। जिसका खेत है वही हल चलाए यह बात नहीं थी, बल्कि एक के खेत की जुताई बुवाई में दस–दस पांच–पांच हाली मिल जाते और काम को निबटा लेते थे। इस तरह फसल की कटाई में भी एक दूसरे का काम मिलजुल कर निबटा लेते थे।

कचहरी में तलवार का कमाल

एक बार एक साधू महाराज राव साहब से मिलने आये थे। वे कचहरी में बैठे राव साहब को अपनी तीर्थ यात्राओं के बारे में चर्चा कर रहे थे। तभी अचानक एक भंवरा आकर साधु महाराज के सिर के ऊपर भिन–भिनाने की आवाज के साथ चक्कर लगाने लगा। भंवरे का इस तरह चर्चा में खलल डालना साधु महाराज को नागवार गुजरा उन्होंने आवेश में म्यान से अपनी तलवार निकाली और भंवरे पर कई वार किये और भंवरा उनसे बचकर निकल गया। राव साहब साधु की इस नाकाम कोशिश पर मुस्कुराते हुए बोले महाराज यह तलवार चलाना साधु सन्यायिसों का काम नहीं है। इस भंवरे को तो हमारा एक बालक ही एक वार में मिटा देगा, और अपने एक अरदली से कहा जा रे छोरा चंदा को बुला के ला चंदा एक अठारह बीस साल का बालक सभी हाजरीन की आदाब करता हुआ कचहरी में दाखिल हुआ और राव जी के चरण छुकर जी, दादा जी मैं हाजिर हूँ कहकर हुकुम के इंतजार में खामोश खड़ा हो गया। बेटा इन साधु महाराज को एक भंवरा बार बार परेशान कर रहा है। इन्होंने उस पर तलवार भी चलाई वह फिर भी नहीं गिरा तुम ही इस भंवरे को सबक सिखाओ। राव साहब ने साधु की तलवार की तरफ इशारा करते हुए चंदा से कहा।

चंदा राव साहब की मुस्कुराहट से समझ गया कि यह साधु के सामने इम्तिहान का मामला है। न कि भंवरे को मारने का। क्योंकि भंवरे को तो कोई अरदली झाडू या पंखे से मार सकता था। चंदा तलवार लेकर खामोशी से कचहरी में भंवरे के इंतजार में एक तरफ को खड़ा हो गया। जैसे ही भंवरे ने कचहरी में भिन्न–भिन्नाते हुए चक्कर लगाया सबकी निगाहे उसकी तरफ उठ गई। जैसे ही भंवरा कचहरी में चक्कर लगाकर चंदा की तरफ आया उसने तलवार हवा में हिलाई। भंवरा दो

टुकड़े होकर जमीन पर गिरा। सबकी जुबान से वाह वाह की आवाज से कचहरी खूंज उठी। एक अरदली दौड़कर भंवरे के दोनों टुकड़े को अपने हाथों में उठा लाया और राव साहब के सामने रख दिये।

राव साहब ने साधु से मुखातिब होकर कहा महाराज देखा आपने दोनों टुकड़े बराबर बराबर के हैं। एक आंख इधर है तो एक आंख इधर है अब भी यकीन न हो तो तराजू में तोल कर देख लें। कचहरी में मौजूद सभी ने भंवरे के दोनों टुकड़ों को देखा और उसे बराबर के दो टुकड़े करने की कला पर चंदा की तारीफ की। इस वाकये का साधु महाराज पर ऐसा असर हुआ कि वे दोनों हाथों में तलवार लेकर राव साहब से बोले राव साहब आप सही कह रहे थे कि जो जिस काबिल होता है वह चीज उसी को शोभा देती है। आप इजाजत दें तो यह तलवार मै चंदा को ही दे दूं। राव साहब ने मुस्कुराते हुए अपनी सहमति और आशीर्वाद का हाथ तलवार पर रख दिया और वह चांदी सी चमकती इंगलिश तलवार चंदा को मिलते ही कचहरी फिर तालियों की आवाज से गूंज उठी।

चंदा कोई राव साहब की कचहरी का नौकर या अरदली नहीं था। बल्कि कचहरी के पास वाली गली में रहने वाले एक मुसलमान रंगरेज का बालक था।

यह वाकया मैंने चंदा (चांद खां) के परपोते खलीफा इसमाईल साहब से सुना था।

इस वाकये से यह बात तो बखूबी जाहिर हो ही जाती है कि राव साहब ने दादरी क्षेत्र की सभी कोमों को आपस में किस कदर भाई चारे और एकता के सूत्र में पिरोया था।

साधु द्वारा कचहरी में चांद खां को दी गई तलवार पीढ़ी दर पीढ़ी खलीफा इशमाईल साहब तक चली आ रही थी। जोकि बाद में उन्होंने मुझे (इस लेखक को) दे दी थी।

1803 में दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा

११ सितम्बर सन १८०३ में दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया और दिल्ली का मुगल बादशाह मराठों की बजाय अंग्रेजों का पेंशनर हो गया तब अंग्रेजों ने राव दरगाही सिंह के मंसब और औहदे में कोई कटौती तो नहीं की लेकिन उन्होंने इसमें तरमीम करके १३३ गांवों की अमलदारी राव दरगाही सिंह के जिंदा रहने तक ही महदूद कर दी।

सन् १८१६ में राव दरगाही सिंह की मृत्यु के बाद १३३ गांवों की अमलदारी वापस ले ली गई और राव दरगाही सिंह के बड़े बेटे राव रोशन सिंह को वारिस मानते हुए अंग्रेजों ने उसकी ३०० रुपये महावार पेंशन मुकर्रर करके १३३ गांवों को अपनी तहवील में लेकर एक अलग परगना बना दिया।

१३३ गांवों की मुकर्ररी वापस लिए जाने के बाद राव रोशन सिंह पर तो कोई खास फर्क न पड़ा क्योंकि उनका घराना तो कई पीढ़ी पहले से ही भटनेर में बेताज बादशाह चला आ रहा था। उनकी जुबान से निकली हर बात इलाके में शाही कानून की तरह मानी जाती थी। उनके अपने परिवार के खर्च के लिये उनकी अपनी जमीन ही काफी थी। इन १३३ गांवों से तो वो सिर्फ उतना ही लगान वसूल कराते थे जितना उन्हें दिल्ली की हुकूमत को देना मुकर्रर कर दिया गया था। लेकिन उनके हाथों से भटनेर का बंदोबस्त निकल जाने के बाद आम जनता मेहनतकश किसान मजदूर को जरूर परेशानी हो गयी थी। क्योंकि ये तमाम बंदोबस्त अंग्रेजों के चापलूस हरामखोरों के हाथों में आ चुका था।

अंग्रेजी हुकूमत के यह हिन्दुस्तानी चापलूस पिट्ठू एक मायने में सरकारी लाइसेंस शुदा डाकू थे। जो दिन के उजाले में ही किसान पर कोड़े बरसाकर लगान के नाम पर उसकी तमाम फसल उठा ले जाया करते थे बचे कुचे को सूद खोर महाजन कब्जा लेता था।

अंग्रजों के इन हिन्दुस्तानी पालतुओं ने मेहनतकश किसान मजदूर को निचोड़ ही दिया था। एक तरफ लखोरी ईंटों की हवेलियां तामीर होने लगी थीं तो दूसरी तरफ छप्पड के लिए फूंस भी जमींदार की इजाजत के बगैर मयस्सर नहीं होता था।

गरमी सर्दी बरसात में दिन रात खेतों में खून पसीना एक करने वालों को मुश्किल से परिवार में बांट कर एक–एक दो–दो रोटी ही मिल पाती थी। बाकी साग–शक्कर, कंदी–गाजर, आलू वगैरा खाकर ही पेट भरना पडता था।

किसी वजह से बारिश न हुई, खेत सूखकर फसल तबाह हो गयी तो समझो गरीब की शामत आ गई, जमींनदार और सूदखोर महाजन के लठैत लगान और सूद

वसूलने में गरीब के बैल गाय और भैंस छीनकर ले जाते, कोड़े लुभाव में बरसाते। १८०३ से १८५७ तक यही हालत तमाम हिन्दुस्तान में मेहनतकश किसान मजदूर की हो चुकी थी।

राव दरगाही सिंह के जमाने वाले भटनेर के खेत खलीहानों गांव गली मुहल्लों चोपालों बाजारों मेले और तीज त्यौहारों वाली रौनक और खुशहाली भी अब लखोरी ईंटों की चन्द चार दीवारियों में कैद हो कर रह गई थी।

अंग्रेजी साम्राज्य की चक्की के इन दोनों पाटों चापलूस जमींदार और सूद खोर महाजन के बीच दिन रात बराबर पिसते रहने से आम आदमी बारूद बन गया था। जिसे अब जरा सी चिंगारी मिलने की देर थी जो कि किसी भी समय भड़क सकती थी।

मेरठ छावनी में फौज की बगावत

इस बारूद में चिंगारी लगाने का काम भी अंग्रेजों ने खुद अंजाम दिया। ८ अप्रेल १८५७ को उन्होंने आजादी का नारा लगाने वाले सबसे पहले क्रांतिकारी मंगल पांडे को तोप के दहाने पर बांध कर चिंगारी दी। वो शोला बनकर तमाम हिन्दुस्तान में फैल गया।

क्रांतिकारियों की तरफ से दिल्ली के पेंशन याफ्ता बादशाह बहादुरशाह जफर को जंगे आजादी का लीडर चुन लिये जाने की खबर सुनकर १० मई १८५७ को मेरठ छावनी में अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने विद्रोह शुरू कर दिया।

उन्होंने सबसे पहले असलाह खाने को लूटा। वहां से हथियार गोला बारूद लेकर उन्होंने गोरे अफसरों को कत्ल करके छावनी में आग लगा दी। फिर वह कई, कई सौ की टोली की शक्ल में मेरठ शहर में फैल गये। वो जिधर भी जाते वहां सिर्फ आग ही आग नजर आती हालांकि उनका अस्ल निशाना सरकारी इमलाक कचहरी दफ्तर बंगले और अंग्रेजी सरकार के हिन्दुस्तानी चापलूस हरामखोर पिट्ठू ही थे। इस वजह से उनके साथ आम शहरी और देहाती। लोग भी शामिल हो गये थें। जंगे आजादी के इन परवानों ने मेरठ जेल तोड़ कर वहां के कैदियों को भी आजाद कर दिया। तहसील कचहरी भी जला डाली।

जब तक गोरा पलटन होशियार हुई यह अपना काम अंजाम देकर जंगल की आग की तरह मेरठ के चारों तरफ के बाहरी इलाकों की जानिब बढ़ चले थे कुछ मुजफ्फरनगर कुछ गाजियाबाद, दिल्ली तो कुछ हापुड़, गुलावठी, बुलन्दशहर,

सिकन्दराबाद आ गये।

१२ मई १८५७ को यह इंकलाबी फौजी सिपाही सिकंदराबाद आ गये। इनके साथ देहात के लोग भी शामिल थे। सिकंदराबाद में कई दिन तक लूट मारकाट और आग जनी बराबर चलती रही। यहां भी अंग्रेजों के बंगले सरकारी इमारतें तहसील वगैरह जंगे आजादी के सिपाहियों का निशाना रहीं।

दादरी अमन का गेहभवारा

दादरी कस्बा जबसे आबाद हुआ है इस पर खुदा की एक खास महरबानी रही है कि तब से अब तक इसके आस पड़ोस के शहरों व कस्बों में कितनी ही बार दंगे फसाद लूटमार आगजनी मार काट होती रही है। लेकिन दादरी कस्बा हमेशा अमन शांती का गेहवारा रहा है।

१८५७ में भी जब मेरठ छावनी से अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तानी सिपाही बगावत पर निकले तब वह जिस शहर से गुजरे वहां उन्होंने लूटमार का बाजार गर्म रखा। लेकिन दादरी में तब भी अमन शांती थी। इसकी एक खास वजह थी राव रोशन सिंह का आला किरदार और अपने पूर्वजों की मर्यादाओं का पालन करना। उन्हें अंग्रेजी हुकुमत की चापलूसी पसंद होती तो उनसे १३३ गांवों की अमलदारी ही क्यों वापस ली होती। उनके इस आला किरदार की वजह से ही अंग्रेजों के चापलूसों की दादरी में आबाद होने की हिम्मत ही न हुई थी। इस वजह से दादरी में न तो अंग्रेजों के बंगले थे न सरकारी दफ्तर न उनके चापलूस ही यहां रहते थे।

जबकि इंकलाबी फौजी सिपाहियों के निशाने पर अंग्रेज और उनके चापलूस जमींदार और सूदखोर महाजन ही थे। लेकिन दादरी में ऐसा कोई था ही नहीं।

राव रोशन सिंह

राव रोशन सिंह १८५७ में ६०–६५ वर्ष के हो चले थे। और अपने पूर्वजों की आन बान और शान व मर्यादाओं को बखूबी निभाए चले आ रहे थे। मादरे वतन की हिफाजत का जज्बा उन्हें पूर्वजों से विरासत में मिला था। उन्हें जब यह मालूम हुआ कि अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आजादी के लिये जंग शुरू कर दी है और इंकलाबियों ने दिल्ली के बादशाह को इस जंगे आजादी का लीडर चुन लिया है। जिसका सीधा मतलब था कि अंग्रेज अब सबसे

पहले दिल्ली को कब्जाने के लिए आगे बढ़ेंगे इस वजह से राव रोशन सिंह ने अपने दोनों जवान बेटों राव विशन सिंह और राव भगवंत सिंह को मय खानदानी भाइयों और साथियों के दिल्ली की हिफाजत के लिये रवाना कर दिया था। वह शहजादा अबुबक्र के साथ गाजियाबाद के पास हिन्डन नदी के पश्चिमी तट पर मोर्चा लगाए हुए थे।

इधर मेरठ छावनी से बगावत कर के भागे हुए क्रांतिकारी फौजी सिपाही अंग्रेजों को मारते काटते अपने–अपने इलाकों की तरफ वापिस आ रहे थे। दादरी में आने वाले सिपाहियों के हाथ कहीं से कुछ अंग्रेज औरतें और बच्चे लग गए थे। जिन्हें वे अपने साथ ले आए थे।

जैसे ही इस बात की खबर राव रोशन सिंह को मिली उन्होंने अपने आदमी भेज कर उन औरतों और बच्चों को सिपाहियों से छुड़ाकर अपनी हिफाजत में महफूज जगह पहुंचा दिया और उनके खाने रहने का बंदोबस्त करा दिया। उसी दौरान मेरठ छावनी से भागे इंकलाबी सिपाहियों को पकड़ने के लिये एक अंग्रेज अफसर टर्नबुल गोरा पलटन लेकर चला और उसने गांव बढ़पुरा को घेर लिया। बढ़पुरा में अहमान गुर्जर का बेटा फौज से भागकर आया था। उसने अपने चंद गांव के साथियों को साथ लेकर गोरा पलटन का मुकाबला किया। इस मुकाबले में टर्नबुल की टांग में गोली लगी थी। अहमान गुर्जर का बेटा और उसका एक साथी लक्षमण भारती दोनों शहीद हो गये और उनके कई साथी भी जख्मी हो गये थे।

इसी गोरा पलटन के साथ वो अंग्रेज औरतें और बच्चे भी शामिल होकर साथ चले गये जिन्हें रावं रोशन सिंह ने अपनी पनाह दी थी। हालांकि राव रोशन सिंह का यह ख्याल बहुत ही बहतर था कि दुशमनों की चंद बेसहारा औरतें और बच्चों को परेशान करने या कत्ल करने से हिन्दुस्तान तो आजाद नहीं हो जाएगा। बल्कि अपनी और अपने इलाके की मर्यादा जरूर नष्ट हो जाएगी।

लेकिन उनसे एक बहुत बड़ी भूल यह हो गई कि न तो उन्होंने इन औरतों और बच्चों के नाम पते दर्ज कराये न उन्हें किसी जिम्मेदार आदमी के जरिये किसी अंग्रेज अफसर के सुपूर्द कराया।

बल्लबगढ़ नरेश नाहर सिंह की गद्दारी

बल्लभगढ़ नरेश नाहर सिंह को उन अंग्रेज औरतों और बच्चों को बागी सिपाहियों से छुड़ाकर राव रोशन सिंह द्वारा अपनी पनाह में रखने और उनके नाम पते दर्ज न कराने और उनका गोरा पलटन में शामिल होकर दादरी से चले जाने का पूरा इल्म था।

नाहर सिंह मौका परस्त और वक्त के साथ रूप बदलने का माहिर था। १८०३ में अंग्रेजों ने जब मराठों को हरा कर दिल्ली पर कब्जा किया तो उसके पूर्वजों ने अंग्रेजों की चापलूसी कर अपनी जागीरदारी बनाये रखी और जब १८५७ में इंकलाबियों ने बहादुरशाह जफर को जंगे आजादी का लीडर चुना तो नाहर सिंह भी उनके साथ हो गया।

३० मई १८५७ को अंग्रेजी फौजें दिल्ली की तरफ बढ़ने लगीं तो उन्हें रोकने में हिन्डन नदी वाले मोर्चों पर शहजादा अबुबक्र के साथ 'राव विशन सिंह' राव भगवंत सिंह के अलावा नाहर सिंह भी शरीके जंग था।

लेकिन जैसे ही अंग्रेजों ने इंकलाबियों को हिन्डन नदी के मोर्चे पर उलझाए रखकर बागपत के रास्ते दिल्ली पर कब्जा किया नाहर सिंह ने पाला बदला और अंग्रेजों से जा मिला।

लेकिन उसने इस बात की किसी को खबर न होने दी और इंकलाबियों के हाथ से दिल्ली निकल जाने के बाद के बदले हुए हालात के मुताबिक नई रणनीति बनाने के बहाने से राव रोशन सिंह और उनके दोनों बेटों को किसी खुफिया जगह पर बुलाकर अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार करा दिया।

क्योंकि नाहर सिंह की निगाहें भटनेर पर लगी हुई थीं। वह अंग्रेजों से भटनेर पर अपनी अमलदारी हासिल करना चाहता था। लेकिन राव परिवार के होते हुए इस मकसद में कामयाब होना ना मुमकिन था। इसलिए उसने मौका मिलते ही एक तीर से दो निशाने साध लिये एक निशाने पर राव रोशन सिंह के परिवार का खात्मा तो दूसरे निशाने में खुद को अंग्रेजों का वफादार चापलूस साबित करना। इसके बाद भटनेर पर अंग्रेजों से अपने लिये अमलदारी हासिल करने में उसके लिये कोई रूकावट ही नहीं रह जानी थी।

नाहर सिंह को इसका इलम था ही कि राव रोशन सिंह ने कुछ अंग्रेज औरतों और बच्चों को इंकलाबियों से छुड़ाकर अपनी पनाह में किस जगह रखवाया था। और उनके नाम व पते दर्ज न कराने की भूल भी राव रोशन सिंह कर चुके है। इसी

सच्चाई में मिलावट करके नाहर सिंह ने अंग्रेजों को बताया कि राव रोशन सिंह के इशारे पर उनके आदमियों ने कुछ अंग्रेज औरतों और बच्चों को अपनी गिरफ्त में लेकर उनका मान मरदन किया फिर उन्हें कत्ल करा दिया। अंग्रेजों से मिलकर नाहर सिंह ने यह षड्यंत्र रचा तो दूसरी तरफ उसने दादरी से राव रोशन सिंह और उनके दोनों बेटों राव विशन सिंह और राव भगवत सिंह को इंकलाबियों के हाथ से दिल्ली निकल जाने के बाद के हालात पर रणनीति बनाने के बहाने किसी पोशीदा जगह पर तन्हा बुलाकर उन्हें अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार करा दिया।

गिरफ्तारी के फौरन बाद ही अंग्रेज मुआएना कर अफसरों ने गोरा पलटने के साथ उस जगह का मुआयना करके उस की जांच पड़ताल शुरू कर दी जहां रोशन सिंह की पनाह में वो अंग्रेज औरतें और बच्चे रहे थे। मुआयना कर अंग्रेज अफसरों को उस जगह के इर्द–गिर्द कुछ ऐसे सबूत मिले जैसे टोप मौजे फटे–पुराने अंग्रेजी पहनावे के कपड़े वगैरह जिनसे उनके यहां रहने की पक्की तस्दीक होती थी (ना मालूम यह कपड़े नाहर सिंह ने वहां डलवाए थे या अंग्रेज औरतों ने बच्चों की टट्टी वगैरहा उनसे साफ करके फैंके थे) राव रोशन सिंह उनके नाम पते दर्ज न कराने की भूल कर ही चुके थे और मेरठ से बगावत करके भागे हुए सिपाहियों को गिरफ्तार करने के मकसद से टर्नबल की गोरा पलटन ने जब दादरी और बढपुरा का घेराव किया था तब आम लोग तो आबादी से निकल कर जंगल में चले गए थे उसी दौरान वो अंग्रेज औरतें और बच्चे गौरी पलटन में जा मिले थे। उस वक्त भी कोई मुकामी सख्स उन्हें किसी अंग्रेज फौजी अफसर के हवाले करके कोई सबूत हासिल कर लेता तो भी राव रोशन सिंह का बचाव हो सकता था। उन पर बादशाह का साथ देने का इल्जाम तो था ही। इस मामले में अंग्रेजो ने और ज्यादा तहकीकात भी नहीं कराई और इसे राव रोशन सिंह के इशारे पर बहुत ही घिनावना अमल तसलीम करते हुए ऐसी ही घिनानवी सजाये मौत सुनाते हुए उन्हें मुशकें बांध कर हाथियों से कुचलवा दिया। बाद में अंग्रेजों ने शहीद राव रोशन सिंह और उनके दोनों बेटों शहीद राव विशन सिंह और शहीद राव भगवंत सिंह के शव कब और कहां किस इज्जत बेइज्जती से सुपर्द ए खाक कराये इसका किसी को कोई पता न चल सका। हालांकि गद्दार नाहर सिंह को अंग्रेजों ने बाद में इनाम में फांसी ही दी थी। लेकिन भटनेर और साठा चौरासी के मान सम्मान का सूरज तो जालिम अंग्रेजों ने बेइज्जत करके अपने जालिमाना अंदाज से रौंद ही डाला था।

भटनेर की एक दर्द भरी अंतहीन रात

राव रोशन सिंह और उनके दोनों बेटों को दिल्ली में शहीद किए जाने की खबर जमना नदी से काली नदी तक के दोआब के इलाकों खासकर भटनेर में जंगल की आग की तरह दम के दम में फैलने लगी। जो सुनता अपना आपा खो बैठता। कोई पछाड़ खाकर जमीन पर गिरकर बेहोश हो जाता तो कोई औल फौल बकने लगता। कोई चीखें मारकर रो रहा था तो कोई दीवार में सर मारने लगता। कोई घुटनों में सर रखकर जमीन पर गठरी बन गया था। बच्चे बूढ़े जवान मर्द औरतें सबकी बुरी हालत थी। इलाके का माना हुआ पहलवान भी आज एक कमजोर और अपाहिज बच्चे की तरह फफक–फफक कर रो रहा था। किसी को तसल्ली और दिलासा देने वाला कोई नहीं था। जो जहां था वहीं पड़ा था। जो जहां बैठ गया था बस बैठ गया था। जो रो रहा था बस रो रहा था। जो दीवार या पेड़ से सर मार–मार कर बेहोश होकर गिर गया था वो वैसे ही पड़ा था। उठाने, पानी पिलाने या किसी को पुचकारने, तसल्ली देने वाला कोई नहीं था। बच्चे खामोश होकर अपनी मांओं का रूदन व विलाप ही देखे जा रहे थे। उनकी छातियों से चिपक कर दूध पीना भूल गये थे। खोरों में पड़े हुए नियार फूंस में मुंह न मार कर गाय, बैल और भैंस जंगलों से आकर अपने अपने स्थानों पर खामोश बैठ गये थे। गली मुहल्लों के कुत्ते भी भागना दौड़ना और भौंकना भूलकर जहां तहां बैठे हुए लोगों के आसपास ही आकर खामोशी से बैठ गये थे। जब कहीं से किसी के विलाप करने या किसी गाय भैंस के रम्भाने की आवाज खामोशी को तोड़ती तो कुत्ते भी टांगों में से अपना सिर उठाकर आसमान की तरफ देखते। जैसे वो कह रहे हों या खुदा अब क्या होगा और फिर अपने सिर को टांगों में गिराकर निढाल से हो जाते। घरों में चूल्हें तो क्या चराग के जलाने का किसी को ख्याल नहीं था। नौजवान लड़के बार–बार बुजुर्गों से एक ही सवाल करते बाबा अब हम क्या करें और उन्हें हर बार तसल्ली करो का ही जवाब मिलता। कुछ नौजवानों ने अपने घोड़े एक गांव से दूसरे गांवों तक दौड़ा दिये। ताकि वहां जाकर उनकी सुनें और अपनी बताकर आएं। जिस गांव में किसी के घोड़ा दौड़ा कर आने की आहट होती लोग दौड़कर आने वाले को चारों ओर से घेर कर खड़े हो जाते और दूसरे गांव का हाल मालूम करते। आने वाला भी उस गांव का हाल मालूम करता और दूसरे गांव की तरफ घोड़ा दौड़ाता हुआ चला जाता। रूदन और विलाप अपने साथ लेकर आई भटनेर की ये दुख भरी अंतहीन रात जैसे ठहर सी गई थी और इसका सवेरा होता किसी को नजर नहीं आ रहा था।

तिल बेगमपुर की महा पंचायत

पौ फटने में आभी काफी देर थी लेकिन भटनेर और साठा चौरासी के गांवों के चौधरी, जमींदार और जिम्मेदार लोग तिल बेगमपुर आने शुरू हो गये थे। क्योंकि तिल बेगमपुर के मुसलमान राजपूतों को इलाके के हिन्दु राजपूत और गुर्जर सदियों से अपने बड़े भाई के दर्जे मे मानते आए हैं। इलाके में जब भी कोई मान सम्मान या पगड़ी वगैरह का प्रोग्राम होता है तो सब से पहली पगड़ी मुसलमान राजपूतों के बांधी जाती है।

इस बारे में कहा जाता है कि महाराजा पृथ्वीराज चौहान के वंश में महाराणा रावल रणवीर सिंह भाटिन्डा जैसलमेर भटनेर और सिरसा रियासत के मालिक व खुद मुख्त्यार राजा थे। जब सुल्तान अलाऊद्दीन खिलजी ने रणथम्बोर पर हमला किया तो राणा रणवीर सिंह बिरादराना और रिश्ते दारी ताल्लुकात की बिना पर रणथम्भोर के राजा की हिमायत में कई साल तक सुल्तान अलाउद्दीन से जंग करते रहे। एक दिन मैदाने जंग में लड़ते वक्त राणा रणवीर सिंह की तलवार टूट गई और उन्हें जिंदा गिरफ्तार कर लिया गया।

राणा रणवीर सिंह के गिरफ्तार हो जाने के बाद उनके तीन बेटे मय पांच हजार जांबाज साथियों के वहां से फरार होकर दिल्ली के किलोखड़ी के मैदान में पड़ाव आ डाला। उस वक्त सुल्तान अलाउद्दीन की जानिब से दिल्ली पर कतलुबेग हाकिम था। शहजादों ने मौका पाकर रात के वक्त दिल्ली पर हमला किया तो लूट में बहुत सा माल ओ असबाब हाथ आया। उसे लेकर शहजादे रातों रात जमना पार के मैदान में आ गये जहां आज कस्बा कासना है जो कि सिकन्द्राबाद से दस–ग्यारह मील पश्चिम में आबाद है। यहां के रईस जोकि कौम से खतरी थे को कत्ल कर के खुद मालिकों मुख्तयार बन गये। यहां उन्होंने एक किला तामीर कराया और बड़े शहजादे राणा कोसल सिंह के नाम पर उस गांव का नाम कासना रखा।

बारह साल के बाद मेवाड़ को जीतकर सुलतान अलाउद्दीन खिलजी जब दिल्ली वापस आया और उसने दिल्ली में जीत का जश्न मनाया और दरबार लगाया। तब कासने के रईस खत्री के बेटों ने दरबार में फरयाद की और अपने बाप को कत्ल किये जाने और राणा कांसल का कासने पर कब्जा करने का तमाम अहवाल सुलतान को सुनाया तो सुलतान ने उनकी मदद करने का दिलासा देकर अपने हाकिम कतलुबेग को दस हजार फौज देकर शहजादों की सरकोबी के लिये रवाना किया।

कतलुबेग ने यमुना नदी पार करते ही मोर्चा संभाल लिया। इधर तीनों शहजादे

भी मय अपने अजीजों अकारिब के पांच हजार जांबाजों के सुल्तान की फौज से भिड़ गये। जंग इस कदर फैसला कुन थी कि मरने वालों की लाशें जिस नहर में डाली जाती थीं उसका पानी मिसले खून लाल हो गया था। जिसकी वजह से उस नहर का नाम लोहिया खाल बोला जाने लगा। छः महीने बराबर जंग करते रहने के बाद तीनों शहजादे गिरफ्तार कर लिये गये। कतलु बेग ने गिरफ्तार तीनों शहजादों को सुल्तान के सामने पेश कर दिया।

सुल्तान की तरफ से इसलान कबूल करने की पेशकश को शहजादों ने रद्द कर दिया तो सुल्तान ने उन्हें सजाए मौत का फरमान जारी कर दिया। जिस वक्त जल्लाद उन्हें कत्ल करने के लिए कत्ल गाह में लेकर पहुंचे और उनसे आखरी खुवाहिश नालूम की तो बड़े शहजादे कांसल सिंह ने कहा हमें फिर से सुलतान के सामने ले चलो उन्हें फिर से सुलतान के सामने पेश किय गया तो राणा कांसल सिंह ने अर्ज की कि जहां पनाह अगर मेरे दोनों भाइयों को उनके पहले मजहब पर ही रहने दिया जाए और उनकी देखभाल की जिम्मेदारी मेरे सुपुर्द रखी जाए तो मैं इसलाम कुबूल कर सकता हूँ। सुलतान ने शहजादे की यह बात मान ली और इसलाम कुबूल कर लेने के बाद बड़े शहजादे का नाम कांसल सिंह से बदल कर मौहम्मद कासिम रखा गया।

कासने का इलाका उसके पहले वासियों को दे दिया गया और इन तीनों भाइयों को सूबा दारूल खिलफ दिल्ली के खाते से अड़तीस हजार बीघा जमीन गैर आबाद मुकर्रर हुई और फरमान शाही लिखकर उनको दिया गया और कासना छोड़कर तिलबेगमपुर में आबाद होने का उन्हें हुकम हुआ। इस तरह तीनों भाई तिलबेगमपुर में आबाद हुए। बाद में राजा कांसल सिंह /मोहम्मद कासिम की औलाद ने पांच गांव तिलबेगमपुर, दोला रजपुरा, मंढपा, अंधेल व कलोदां बगेरा आबाद किये। मंझले भाई राणा जामल सिंह की औलाद से १६ गांव आबाद हुए जिन में घोड़ी बछेड़, धूम बगेरा मौजूद हैं। यह राजपूत कहलाते हैं। छोटे भाई राणा निरोतम सिंह की औलाद से ३४५ गांव मौजूद हैं और यह गुर्जर कहलाते हैं। इस तरह राणा कांसल सिंह जिनको इसलाम कबूल करने के बाद मौहम्मद कासिम कहा गया। इनकी औलाद को अध भइया (आधा भाई) कहा जाने लगा जोकि बाद में बिगड़ कर अधभरया हो गया। अधभरया मुसलमान राजपूतों के लिये प्रयोग होता है। बड़े भाई राणा कांसल सिंह यानी मौहम्मद कासिम की औलाद होने के नाते सदियों बाद भी इन्हें हिन्दू राजपूत और गुर्जर अपने बड़े भाई जैसा ही मान सम्मान देते हैं और पहली पगड़ी उन्हें ही बांधी जाती है।

मुसलमान राजपूतों ने भी हमेशा इस मान सम्मान और पगड़ी की लाज निभाई

हैं। जहां हिन्दू भाइयों का पसीना गिरा है वहां उन्होंने अपना खून पेश किया है। हर मौके पर कदम से कदम मिलाकर साथ चले है। वतन की आजादी के लिये कदम से कदम मिलाकर अंग्रेजों से जंग की तो फांसियों पर भी साथ साथ लटके। धर्म और मजहब को कभी दीवार नहीं बनने दिया।

मुसलमान राजपूत व हिन्दू राजपूत और गुर्जर दादरी भटनेर में यह तीनों थ्री फेस की तरह है। इनमें अगर खून का रिश्ता न होता तो दादरी भटनेर का इलाका भी जातिवाद और धर्म वाद के झगड़ों का गढ़ होता। दादरी भटनेर ने १८५७ की क्रांति की जंग में अंग्रेजों के दांत खट्टे करने में अपनी मिसाल कायम की थी वैसी ही भटनेर को मजहबी दंगों से बचाए रखने में अपनी मिसाल कायम की है। इस बात में भी गुर्जरों को सबसे आगे माना जा सकता है क्योंकि गुर्जरों में मजहबी तआसुब नहीं होता हैं।

मैं बयान कर रहा था कि पौ फटने यानी सूरज निकलने में अभी देर थी। लेकिन भटनेर और साठा चौरासी के गांवों के चौधरी और जिम्मेदार लोग तिल बेगमपुर में आने शुरू हो गए थे। तिलबेगमपुर के चौधरी राणा पीर बख्श व परिवार के अलावा गांव के तमाम लोग जोकि राव रोशन सिंह और उनके बेटों की दर्द नाक मौत की खबर से रंजो गम में डुबे हुए थे। वह सभी इन दूसरे गांवों से आने वाले लोगों को देखकर उनके हुक्का पानी की देखभाल में लग गये।

मजहब बदल जाने से खून के रिश्ते नहीं बदल जाते। छोटे अगर बड़ों की इज्जत का ख्याल रखें और बड़े भी छोटों पर प्यार का साया रखे तो दिलों के तार जुड़े रहते हैं। ऐसे हालात में दिलों के जो फैसले होते है वे सभी के लिए बहतर होते हैं। पल पल बदलते हुए इलाके के हालात में सभी के दिल ने यही राह सुझाई थी कि बड़े भाई को गांव में ही चलकर इस अलम नाक सान्हे पर आंसू बहाएं और आगे क्या करना है इस पर मशवरा करें।

तिल बेगम पुर आने वालो में नंगला नेन सुख के झंडू जमींदार, गांव लुहारली के मजलिस जमींदार, बील के रूपराम और हरदेव सिंह मसोता के इन्द्र सिंह और भोलू सिंह खगवा बास के भूरा सिंह और महताब खां सांवली के मैदा सिंह, हिरदे पुर के मुलको सिंह, सेतली के मंगनी सिंह जमींदार, गांव चिठहेड़ा के जैमल सिंह और फत्ते सिंह, दादरी के चौधरी गौहर खां महेपा के देवी सिंह गांव कठहेड़ा के राव उमराव सिंह, कलोंदा के तहवर अली खां, अट्टा के इन्द्र सिंह, जुनेदपुर के दरयाव सिंह राजपुर के सुरजीत सिंह, 'अटाव' के नत्था सिंह, गुनापुर के राम बख्श आदि और भी कितने गांवों के चौधरी और जमींदार आते ही जा रहे थे। हजारों की भीड़ में बेधड़क बोलने वालों के पास बोलने के लिए कोई शब्द नहीं था। सिर्फ दुआ

सलाम रामा कृष्णा के लिए ही होंठ हिलते फिर खामोश हो जाते।

शाम होते होते तिल बेगम पुर में तीस हजार भटनेरवासी इकट्ठा हो चुके थे। सभी को एक बड़े मैदान में बैठाने का बंदुबस्त किया गया था। दूर तक पल्ल बिछाकर बीच में एक तख्त भी लाकर रखा गया। ताकि बीच में ऊंची जगह से कही गई कोई भी बात चारों तरफ बैठने वालों तक पहुंच जाए। रोशनी के लिए पेड़ों पर मशालें लगा दी गई थीं।

तख्त के चारों तरफ गांवों से आने वाले सभी जिम्मेदार लोग बैठे हुए थे। बाकी चारों तरफ लोगों की भीड़ ही भीड़ नजर आ रही थी। सभी लोग इस दर्द नाक हदसे पर इलाके के जिम्मेदार लोगों की राय सुनने के इंतजार में थे। इस खामोशी को तोड़ने के लिए तिल बेगमपुर के चौधरी राणा पीर बख्श खां तख्त पर आकर खड़े हुए। सभी लोगों की तवज्जों उनकी तरफ हो गई। राणा पीर बख्श खां आज जैसे मायूस और उदास कभी नहीं देखे गए थे। हजारों की भीड़ में बेधड़क बोलने वाले आज बात शुरू करने के लिए शब्द ढूढ़ते हुए नजर आ रहे थे। खुद को संभालते हुए पीर बख्श खां ने बोलना शुरू किया।

मौहतरिम बुजरगों और प्यारे भाइयों चाचा राव रोशन सिंह और उनके दोनों बेटे भाई विशन सिंह और भाई भगवंत सिंह जालिम अंग्रेजों ने जिस जालिमाना तरीके से शहीद किए हैं। मेरी जुबान में उसे बयान करने की ताकत नहीं है। हालात ने आज हम सब को एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा किया है जहां एक तरफ अंधा कुंआ है तो दूसरी तरफ गहरी खाई है। हम सभी जानते हैं कि जब हमारे पूर्वज इस इलाके में आए थे। तो यहां बीहड़ जंगल थे। उन्होंने रात दिन मेहनत करके उन जंगलों को काटकर जमीन को समतल करके उपजाऊ बनाई थी। आज उस जमीन की तमाम पैदावार अंग्रेजों और उन के पिट्ठू उठा ले जाते हैं और सभी हम किसान लोग रात दिन खेतों में मेहनत करने के बाद भी खाली हाथ रह जाते हैं। हमारी एक ही तो नाम मात्र की रियासत थी। अंग्रेजों ने वह भी छीन ली।

अलावा इन सबके अंग्रेजों के जुर्म और ज्यादतियां रोज नए रूप में सामने आ रही हैं। जबसे बुलन्दशहर की जेल पर हमला करके चन्द क्रांतिकारियों को छुड़ाया गया है। अंग्रेज भी अब क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके जेलों में न रखकर उन्हें जहां गिरफ्तार करते हैं, वहीं सभी के सामने पेड़ों पर फांसी लगा देते हैं। मुकाबला करने में जो मौके पर ही मारे जाते हैं वह लोग अलग है।

काली पलटन से भागे हुए सिपाहियों को तलाशने के बहाने अंग्रेज गांवों में दबिश डालकर आम लोगों को भी गिरफ्तार करके फांसी पर लटका देते हैं।

अगर हम फिरंगियों के इस जालिमाना तौर तरीकों को बरदाश्त करके खामोश

रहेंगे तोउनके जुल्म और बढ़ जाएंगे और अगर मुकाबले पर आते हैं तो हमें एक ऐसी ताकत से मुकाबला करना है जिसकी हुकूमत का दायरा सूरज निकलने से सूरज छुपने तक फैला हुआ है और वह लोग हर तरह के हथियारों और ट्रेनिंग याफता फौज के नालिक हैं।

इसलिए आज हमें जो भी कदम उठाना है बहुत ही सोच समझ कर उठाना है।

दादरी भटनेर की आजाद रियासत का ऐलान

तिल बेगमपुर में यकजा होने वाले ३० हजार भटनेरवासी राणापीर बख्श खां की बातें बड़ी खामोशी और निहायत गौर से सुन रहे थे। पीर बख्श खां कह रहे थे खुदा के बाद दुनिया में किसान भी दूसरा अनदाता होता है। वह 'गर्मी' 'सर्दी' बरसात और आंधी तूफान में रात दिन खेतों में काम करके फसल उगाता है। उसकी दिन रात की मेहनत दुनिया के पशु पक्षी और इंसानों की भूख मिटाती है। लेकिन किसान की भूख की परवाह कोई नहीं करता।

किसान कर्ज लेकर खेत में बीज बोता है। लेकिन सूखा पड़ जाने या बाढ़ आ जाने से किसान की फसल तबाह हो जाती है। फिर भी जमींदार के लगान और महाजन के ब्याज में कोई कमी नहीं होती। ऐसे हालत में किसान की मदद करने की बजाय जमींदार और महाजन के आदमी उस किसान के 'गाय भैंस और बैल वगैरह तक खोल कर ले जाते है। इसके बाद भी किसान और उसके परिवार को बेगार करने पर मजबूर किया जाता है। किसान की तरफ से बेगार न करने की कोई गुहार की जाती है। तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं। अंग्रेजी सरकार भी अपने उन्हीं सरकारी लइसेंस याफता जालिमों का साथ देती है।

ऐसे हालात में हमारे अनेक किसान भाई खुदकशी कर लेते हैं। कोई तो यह सोच कर कि हमारे बाद यह जालिम हमारे बीवी बच्चों को परेशान करेंगे वह तमाम परिवार के साथ ही अपने घर में आग लगाकर जान दे देते हैं।

आज मैं अपने किसान भाईयों से यह ही बात कहना चाहता हूँ। वह अपनी जिस जिंदगी को कुएं या दरिया में कूद कर या आग लगाकर खत्म कर देते हैं। अगर वह खुदकशी न करके अपनी अनमोल जिंदगी को मातृभूमि को आजाद कराने में खर्च कर दें तो मैं यकीन से कह सकता हूं कि इस अंग्रेजी जालिम हुकूमत और उसके बनाए हर विभाग को हिन्दुस्तान की सर जमीं से उखाड़ फैंका जा सकता है।

राणापीर बख्श की इस बात से अचानक तीस हजार भटनेर के लोगों की खामोशी तोड़ते हुए एक आवाज गूंजी – हम आज से अपने जीते जी जालिमों के

नापाक कदम अपनी मात्र भूमि पर नहीं पड़ने देंगे। इसी आवाज में आवाज मिलाते हुए दूसरी आवाज गूंजी हम अपने खून में डुबो कर जालिम हुकूमत को फना कर देंगे। कि एक और आवाज भटनेर आजाद रियासत इस आवाज के साथ ही एक आवाज में तनाम लोगों ने जिन्दाबाद कहा। फिर तो यही आवाज बराबर गूंजती रही। इसी मे एक आवाज उमराव सिंह जिन्दाबाद भी थी भीड़ में नारे गूंज ही रहे थे कि तख्त पर एक दो आदनी कपड़ों को हिलाकर भीड़ को शांत करने लगे। इसी दौरान तख्त के चारों तरफ बैठे हुए बीस तीस आदमी खड़े होकर पीर बख्श खां से कुछ मशवरा करने लगें। माहौल शांत हुआ तो पीर बक्श खां ने कहना शुरू किया। भाईयों आपने जो फैसला किया है वह हमने भी सुन लिया है हम सभी का भी अब यही फैसला है और अभी से यह अहद करते हैं कि अब हमारे जीते जी जो सूरज निकलेगा वह भटनेर और साठा चौरासी की आजाद रियासत का आजाद सूरज होगा। हम रहें न रहें हमारी नस्लें भी तब तक खामोश नहीं बैठेगी जब तक जालिम हुकुमराओं को अपनी मातृभूमि से खदेड़ कर बाहर न किया जाएगा।

कहते हैं कि तिल बैगमपुर की इस महापंचायत जिसमें तीस हजार भटनेर और साठा चौरासी के लोग जमा थे, भटनेर आजाद रियासत के ऐलान के साथ यही आजादी की जंग के मुख्य नेता के रूप में राव उमराव सिंह को राव से राजा का खिताब भटनेर वासियों ने दिया।

मुगलिया दौर में जब दादरी रियासत वजूद में आई थी, तब राव दरगाही सिंह को १३३ गांवों की अनलदारी दी गई थी और राव दरगाही सिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने वह गांव वापस ले लिए थे। १८५७ में गदर हो जाने के बाद जब क्रांतिकारियों ने भटनेर को आजाद रियासत घोषित किया तो उसमें ४४५ गांव हो गए थे। इनमें ३६० गांव गूजरों के और ८४ गांव राजपूतों के भी शामिल हो गए थे।

भटनेर आजाद रियासत का ऐलान होते ही सुबह होने तक क्रांतिकारियों ने यह तमाम इलाके अंग्रेजी सरकार के तमाम अहलकारों से खाली करा लिए थे। अंग्रेजों के दलाल और पिट्ठू भी जान बचाकर महफूज जगहों पर भाग गए थे।

भटनेर के बहादुर क्रांतिकारी अंग्रेजों के इन दलालों के कोठी बंगलों और हवेलियों के किवाड़ चौखट और जंगले आदि तक उखाड़ लाए थे। हालांकि यह तमाम चीजें कच्चे मकानों में रहने वाले क्रांतिकारियों के किसी काम के नहीं थे। फिर भी यह तमाम चीजें भटनेर को आजाद कराने की प्रतीक तो थी ही। क्रांतिकारियों ने अपने–अपने गांवों में लाकर उन तमाम चीजों को चौराहों पर गाड़ दिया था। एक मायने में दादरी तो उजाड़ ही दी गई थी। राव दरगाही सिंह की बनवाई हुई कचहरी भी ध्वस्त कर दी गई थी। हालांकि कितने ही बेहिसाब

क्रांतिकारी मुकाबलों में शहीद हुए और अन्ततः क्रांतिकारियों को अंग्रेज मुकाबलों के बाद गिरफ्तार करके साथ के साथ ही पेड़ों पर फांसी लगा देते थे। फिर भी उन्होंने चंद मुख्य क्रांतिकारियों पर बराए नाम मुकदमा चलाकर उन्हें बुलन्दशहर में फांसी दे दी। उस जगह का नाम कत्ले आम पुकारा जाने लगा। बाद में उस इलाके को काला आम कहने लगे हैं। इस तरह अंग्रेजी सरकार ने यह बात साबित करने की कोशिश की थी कि उसने क्रांतिकारियों पर काबू पाकर गदर को खत्म कर दिया।

अगर अंग्रेजों ने गदर को वाकई कुचल दिया था काबू पालिया था तो उन्होंने १८७०' में भटनेर को गैर महफूज इलाका क्यों घोषित किया?इससे भी यही बात साबित होती है कि इस इलाके के क्रांतिकारियों ने छापामार जंग शुरू रख अंग्रेजों की नींद उड़ा रखी थी और यह जंग अंग्रेजों के हिन्दुस्तान छोड़कर जाने तक जारी रही। यानी १८५७ से १९४७ तक ९० साल तक भटनेर का इलाका क्रांतिकारियों का गढ़ था। क्योंकि जंगे आजादी के अमर शहीद भगत सिंह भी दादरी के करीबी गांव नलगड़ा में आ गए थे। यही से उन्होंने ने दिल्ली असेम्बली में बम फैंकने का प्रोग्राम और बम बनाए थे।

राजा राव उमराव सिंह

१८५७ में हिन्दुस्तान में भी चन्द अखबार निकलने लगे थे। उनमें जंगे आजादी की खबरें गदर के नाम से अक्सर छपती रहती थीं। दादरी भटनेर की खबरें भी उनमें खूब छपती थीं। वह अखबार अब भी कलकत्ता की नेशनल लाईब्रेरी में मौजूद हैं। उनमें राव उमराव सिंह के राजा कहलाने और भटनेर का इलाका अंग्रेजी सरकार के हाथ से निकल जाने की खबरें काफी तादाद में मौजूद हैं। राजा राव उमराव सिंह दादरी के राव दरगाही सिंह के पोते और राव रोशन सिंह के छोटे भाई अर्जुन सिंह के बेटे थे। राव उमराव सिंह १८५७ की आजादी की जंग में शुरू में ही शामिल हो गए थे। ३०–३१ मई १८५७ को गाजियाबाद हिंडन नदी के पुल पर अंग्रेजों को दिल्ली जाने से रोकने के लिए जंग में भी भटनेर के क्रांतिकारियों के साथ थे।

तब नदी पर एक लोहे का पुल था। पुल के बाएं तरफ अंग्रेजी फौजों ने मेरठ से आकर मोर्चा संभाला हुआ था उस मुकाबले में बादशाह की फौज नदी के पश्चिम में जहां अब मोहन नगर आबाद है वहां एक ऊंचे टीले पर टिकी हुई थी। नदी के पूर्व में जहां अब रेल का पुल है वहां भटनेर के क्रांतिकारी अपने तोप खाने के साथ अड़े हुए थे ३० और ३१ मई दो दिन लड़ाई हुई और अंग्रेजी फौज को पीछे हटना पड़ा। उस जंग में मारे गए अंग्रेजों की कब्रें अब भी वहां मौजूद हैं। इसी लड़ाई में सरधने की बेगम सुमरू विधवा हुई थी। उसमें कितने क्रांतिकारी शहीद हुए इस का किसी को पता नहीं।

तिल बेगमपुर की महापंचायत में भटनेर को आजाद रियासत घोषित करना और क्रांति की लड़ाई को चालू रखने के लिए मुख्य नेता के रूप में राव उमराव सिंह को भटनेर के राजा चुने जाने से क्रांति की लड़ाई को एक तरह के बंदोबस्त का तरीका मिल गया था। जिसकी वजह से भटनेर वासियों ने १२ मई १८५७ से शुरू हुई इस लड़ाई को २० सितंबर १८५८ तक अंग्रेजी सरकार को भटनेर की धरती पर कदम नहीं रखने दिया और अंग्रेजी सरकार को बराबर टक्कर दी जाती रही।

जबकि भटनेर के पास ऐसा कोई साजोसामान नहीं था। जो कि आजाद रियासत और उसके राजा के पास होता है। भटनेर वासियों ने मातृभूमि के लिए जाने पेश कर दीं थी तो माल की किसे परवाह थी जिस के पास जो कुछ था उसी ने वह माल भी पेश कर दिया था।

जबकि अंग्रेज खुद एक बड़ी ताकत थे। फिर उनका साथ आसपास के रजवाड़े

भी दे रहे थे। इलाके के रईस भी उनके साथ थे। अंग्रेजों के दीगर हिन्दुस्तानी सिपाही, प्यादे, थानेदार, चपरासी आदि भी सिर्फ गूजरों को छोड़कर अंग्रेजों के साथ और अंग्रेजी सरकार की हिफाजत में क्रांतिकारियों से बराबर लड़ रहे थे। क्रांतिकारियों में गूजरों के साथ सिर्फ वह ही हिन्दू मुसलमान साथ थे जो खेती के काम से जुड़े हुए थे। खास तौर से १८५७ की क्रांति की लड़ाई एक महा किसान आंदोलन था। जिसमें साम्राज्यवाद और साहुकारवाद की शोषणकारी व्यवस्था से दुखी किसानों ने हथियार उठा लिए थे। लेकिन अंग्रेंजी सरकार की भी हिन्दुस्तान में काफी गहरी जड़े जम चुकी थीं यहां का शोषण करता सभी वर्ग अंग्रेजों के साथ था। और क्रांतिकारियों से वही लड़ रहा था। अंग्रेज तो ज्यादातर तमाशा देख रहे थे या अपने फायदे में इस लड़ाई का संचालन कर रहे थे। जबकि दोनों तरफ से मरने वाले हिन्दुस्तानी ही थे। इस तरह देखा जाए तो आजादी के लिए लड़ने वाले भी हिन्दुस्तानी थे और गुलामी की हिमायत और हिफाजत करने वाले भी हिन्दुस्तानी ही थे। इस तरह लोहे को लोहा ही काट रहा था।

उस वक्त में अगर तमाम हिन्दुस्तानी एक आवाज और एक साथ हो जाते तो १८५७ में ही हिन्दुस्तान आजाद हो गया होता। लेकिन शायद हिन्दुस्तान की किस्मत में आजादी है ही नहीं। यहां कितने ही उमराव सिंह कितने मजलिस जमींदार कितने ही गौहर खां कितने ही पीर बख्श आजादी के लिए फांसी चढ़ जाएं अपनी जान दे दें क्या फर्क पड़ता है। क्योंकि यहां की कदीम व्यवस्था ही ६० फीसदी जनता का शोषण करके १० फीसदी लोगों की ऐश परस्ती करने पर आधारित रही है और यह १० फीसदी लोग हमेशा उस सरकार की हिमायत में खड़े देखे गए हैं जो इन को जनता का शोषण करने की खुली छूट देती हो। यह ही कारण है कि १८५७ से १९४७ तक करोड़ों हिन्दुस्तानियों ने आजादी के लिए अपनी जानें कुर्बान की, अंग्रेज भी हिन्दुस्तान से चले गए लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान के हालात वहीं हैं। आज भी कर्ज में डूबकर किसान खुदकशी कर रहे हैं। हालांकि राव उमराव सिंह के घराने से अंग्रेजों ने १८१६ में ही १३३ गांवों की अमलदारी जब्त कर ली थी लेकिन भटनेर के इलाके में इस घराने की पहले जैसी ही इज्जत और बात मानी जाती थी क्योंकि यह घराना किसानों का हमेशा पक्षधर बना रहता था। दीगर रजवाड़ों या जमींदारों की तरह यह घराना भी अंग्रेजों की हिमायत करके अपने लिए भी उसी तरह खुली छूट हासिल कर सकता था कि किसानों से मन चाहा कितना ही लगान वसूल कर लें मगर सरकार को उसका तैशुदा लगान जमा करा दें। लेकिन इस घराने को किसानों की बदहाली के बदले अपने ऐशों आराम का सौदा मंजूर नहीं था। इसी वजह से यह घराना भी क्रांति का बिगुल बजते ही पहले

दिन से ही आम किसानों के साथ ही इस जंग में उतर आया था।

भटनेर को आजाद रियासत घोषित करने के बाद ही इन क्रांतिकारी वीरों ने अगस्त १८५७ में मेरठ से बुलन्दशहर जाती हुई अंग्रेजी फौज को गुलावठी के पास ही टक्कर दे दी। जिसमें २० क्रांतिकारियों ने कुर्बानी देकर ५० अंग्रेजी फौजी मार गिराए थे जिनमें अंग्रेज भी थे। बुलन्दशहर गदर बस्ते के दस्तावेजों में लिखा है कि–

२४ सितम्बर को लेफ्टि कर्नल ग्रीथेड के नेतृत्व में विशाल अंग्रेजी सेना ने गाजियाबाद के रास्ते बुलन्दशहर को कूच किया। २६ सितम्बर को दादरी के क्रांतिकारी उस सेना से भिड़ गए और दो दिन तक बराबर घमासान युद्ध चलता रहा।

२८ सितंबर को इसी अंग्रेजी सेना से बुलन्दशहर के क्रांतिकारियों के १४ घंटे के घमासान युद्ध में अंग्रेजो ने बुलन्दशहर पर दोबारा कब्जा कर लिया।

इसके बाद अंग्रेजों ने गांव मालागढ़ के किले पर कई दिन तोपों से गोले बरसा कर उसे खंडहर बना दिया। कहते हैं कि मालागढ़ का वीर क्रांतिकारी नवाब मय साथियों किले की सुरगों से जिंदा निकल गया था।

१८५७–२० सितम्बर को ही अंग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और २१ सितम्बर को बादशाह बहादुर शाह भी गिरफ्तार कर लिए गए। लेकिन दादरी पर अंग्रेजों को २० सितंबर १८५८ में ही कब्जा हासिल हो सका। अंग्रेजों ने दादरी और आसपास के गांवों आग लवा दी थी।

तोपों से गोले बरसा कर राव दरगाही सिंह की बनवाई हुई किला कचहरी भी गिरा दी गई। गोया दादरी तो उजाड़ ही दी गई थी। कितने ही क्रांतिकारियों को पकड़ पकड़ कर पेड़ों पर फांसियां दे दी गई। राव उमराव सिंह को भी गिरफ्तार कर लिया गया। इसी तरह के और भी चंद मशहूर क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके आम क्रांतिकारियों की तरह पेड़ों पर फांसी न देकर कानूनी खाना पूर्ती करने के लिए मुकदमें चलाए अपने पिठ्ठुओं से खिलाफ में गवाहियां दिलवाई। फिर उन्हें बुलन्दशहर काले आन पर फांसियां दे दी गई। और यह देश भक्त क्रांतिकारी वीर देश पर कुर्बान होकर अपने ही देशवासियों द्वारा भुला दिए जाने के लिए अमर हो गए।

1857 के अमर शहीद लुहारली के मजलिस जमींदार

११ सितम्बर १८०३ में अंग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा किया था। लेकिन अंग्रेजों और उनके पिठ्ठुओं की लूट खसोट की नीति के चलते १८५७ तक भटनेर के तमाम इलाके की खुशहाली लखोरी ईटों की चंद चार दीवारियों में सिमट कर रह गई थी।

एक तरफ अनाज गोदामों में पड़ा सड़ता था तो दूसरी तरफ अन्नदाता कहलाने वाले किसान के फूंस के घर में बगैर अनाज के चक्की पर धूल जम जाती। किसान मजदूर गाजर, मूली, शकरकंदी, आलू, साग आदि के मिल जाने पर ही महसूस करता था कि उसे जिंदगी का सहारा मिल गया।

हालांकि किसान पूरी मेहनत और लगन से अपने खेतों में काम को अंजान देते थे। लेकिन जब फसल का अनाज उठाकर घर लाने का समय आता। तभी लगान वसूलने आ जाते अंग्रेजों के पिठ्ठुओं के कारिन्दे। उनसे जो कुछ अनाज बचता उसे सूद खोर महाजन ले जाता। किसान या तो फसल पकने से पहले कच्चे अनाज के होले करके थोड़ा बहुत खा लेता या फिर जो अनाज भूसे के गांठे में छुपा रह जाता उसे ही घर ले आता। उसकी भी रोटी कई–कई दिन छोड़ कर बनाई जाती। वह भी एक–एक दो–दो रोटी हिस्सों में बांट मिलती बाकी साग से ही पेट भरना होता या जब कोई मेहमान आ जाता और उसके लिए रोटी बनती तब उसके खाने के बाद बची रोटियों को टुकड़े करके घर के बच्चों को दी जाती।

किसी वजह से बारिश न हुई और खेत सूख कर फसल बरबाद हो गई या बाढ़ से फसल बह गई तो बेचारे किसान की शामत ही आ गई। लगान वसूलने वाले जमींदार के लठैत और महाजन के लठैत भैंस और बैल खोल कर ले जाते लाठियां बेचारे पर लभाव में पड़ती।

इसी वजह से आम हिन्दुस्तानी किसान मजदूर अंग्रेजी सरकार के अलावा उनके एजेंटों जमींदार और सूद खोर महाजनों से ज्यादा दुखी था।

यही वजह थी कि जब मेरठ से काली पलटन में बगावत भड़की तो आम देहाती जनता खासकर गुर्जर लोग भी शामिल हो गए। उस वक्त तक आजादी जिन्दाबाद का नारा ईजाद नहीं हुआं था। इन लोगों के सिर्फ यही नारे थे। अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फैंकों सरकार के एजेंटों को मार भगाओ उनके कोठी बंगले गिरा डालो जिन बही खातों में हमारे पूर्वज तक गिरवीं रखे पड़े हैं और उनके कर्ज का सूद पीढ़ियों बाद तक वसूला जाता है। उन्हें जला डालो यही गुस्सा था इन देहाती किसान मजदूरों को। तभी तो यह लोग जमींदारों और साहूकारों की हवेलियों के

किवाड चौखट जंगले तक उखाड लाए थे। भला फूंस के कच्चे घरों में रहने वालों के लिए किस काम की थी यह तमाम चीजें लूटा भी तो क्या लूटा ? इन चीजों को गांव तक लाना मुफ्त में बोझ ही मरना था।

१८५७ की इस जंग मे एक बात काबिले गौर है वह यह कि उस वक्त में गुर्जर भी सरकारी औहदे दार और जमींदार थे लेकिन एक भी गुर्जर ऐसा नजर नहीं आता जो इस आग में न कूदा हो। जबकि दूसरी कौमों के लोग कुछ इधर तो कुछ उधर थे। यही खामी थी जो कि यह क्रांति नाकाम हो गई। वरना ऐसे जोश और जज्बे में अंग्रेजों से कई प्रदेश खाली कराए जा सकते थे। जो साहुकार रजवाड़ों या ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए ऐसे हंगामी हालात में अपनी तिजोरियों के मुंह खोल दिया करते थे। उनमें देश भक्ती का जज्बा नहीं जगा था और एक ने भी क्रांतिकारियों की मदद नहीं की थी।

१८५७ की क्रांति की जंग में शामिल होने वाले अनेक गुर्जर जमींदारों के नाम मौजूद है लेकिन यहां हम लुहारली गांव के गुर्जर जमींदार मजलिस जी का जिक्र कर रहे हैं। यह भी उन्हीं रहमदिल जमींदारों में से थे जो किसानों से मुनासिब ही लगान वसूलते थे। अलावा इसके किसान के हालात देखकर उस पर रियायत भी कर दिया करते थे। यूं लुहारली के मजलिस जमींदार पहले दिन से ही क्रांति की जंग में शामिल थे लेकिन तिल बेगमपुर की महा पंचायत में जब राव उमराव सिंह को क्रांति की जंग के महानायक यानी दादरी भटनेर के राजा चुन लिए गए थे। तब जमींदार मलिस ने भी अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फैंकने की कसम उठाई थी। और अपने आसपास के नौजवान क्रांतिकारियों को शामिल करके 'जेली सेना बनाई (जेली किसान के काम आने वाला एक औजार है जिसे किसान लाक और भूसा उठाने के काम में लेता है यह एक लाठी में चार पांच लम्बे सरिये लगा कर हाथ के पंजे की तरह होती है और बल्लभ भाले की जगह हथियार की तरह इस्तेमाल हो जाती है) क्रांतिकारियों के लिए यह एक हथिसार भी थी और पर्चम भी क्योंकि यह दूर से नजर भी आ जाती थी। जिधर जेली सेना चलदेती सभी क्रांतिकारी उधर चल देते। यह जो ऐलान करती सभी उस पर अमल करते। राव उमराव की कमेटी की तरफ से जो हुकुम दिया जाता यह वही करती।

जेली सेना ने १८५७ की क्रांति की जंग में निहायत ही अहम रोल अंजाम दिया था। बुलन्दशहर की जेल पर हमला करके क्रांतिकारियों को छुड़ाया गया। अंग्रेजी सरकार को पंगु बना देना, सरकारी एजेंटों की कोठी हवेलियों को तबाह और बरबाद करना-बुलन्दशहर से गाजियाबाद तक जीटी रोड से मजाल क्या कि अंग्रेजों का एक हरकारा भी गुजर जाए। जेली सेना की दहशत से सिकंदराबाद के

साहुकार तक सिकंदराबाद से भाग कर जहां–तहां जा छिपे थे। जेली सेना ने जी. टी.रोड के तमाम टेलीग्राफ के तार व खम्बे उखाड़ डाले थे। गर्ज यह कि अंग्रेजी सरकार की तमाम संचार व्यवस्था ही तहस–नहस कर डाली थी।

लुहारली गांव के जमींदार मजलिस उन क्रांतिकारी अमर शहीदों में से हैं जिन पर बाद में अंग्रेजों ने बराए नाम मुकदमें चलाकर बुलन्दशहर के काले आम पर फांसियां लगाई थीं।

वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि कुछ खास तरह की बीमारियां होती हैं जो कि पूर्वजों से वंशजों को विरासत में मिलती हैं। मैं इस बात को आगे बढ़ाते हुए यह बात और मानता हूं कि पूर्वजों के 'संस्कार' 'भावनाएं' उद्देश्य और आदर्श 'मर्यादाएं' तक वंशजों को विरासत में मिलती है। मैं जब–जब देहात मोर्चा के संयोजक श्री राज कुमार भाटी और उनकी पथिक ब्रिगेड के बारे में सुनता हूँ तो मुझे महसूस होता है (अगर मैं आवागमन पर विश्वास रखता) तो यह कहता कि गांव लुहारली के महान क्रांतिकारी दादा मजलिस जमींदार ही अपने वंश की छठी पीढ़ी में अपने पोते के रूप में भटनेर की आजादी के लिए अपनी जेली सेना के साथ फिर से आमंत्रित हुए हैं।

शहीद गौहर खां

दिल्ली के बादशाह शाह आलम का वजीर नजीबुद्दौला बहुत दूर की सोच रखता था। इसी के मद्देनजर उसने दिल्ली के चारों तरफ आबाद कौमों में से जो ज्यादा–ज्यादा तादाद में थी उन्हें दिल्ली दरबार से राव की पदवी और कुछ गांवों की अमलदारी भी दिलवाई थी।

वह जानता था कि अबदाली ने दिल्ली पर हमला किया था तो मराठों के अलावा दिल्ली के पास पड़ोस का कोई भी अफराद (व्यक्ति) दिल्ली की हिफाजत के लिए मैदान में नहीं आया था।

क्योंकि दिल्ली की हिफाजत सिर्फ मराठों के इख्तयार में थी। वह इसके लिए बादशाह से १३ लाख रुपये सालाना लेते थे। मराठों ने अपनी फौज में किसी गैर मराठों को भी भर्ती नहीं किया था।

वजीर नजीबुद्दौला ने बल्लभगढ़ और कुचेसर में जाटों को और दादरी में राव दरगाही सिंह को राव की पदवी और १३३ गांवों की अमलदारी दिलाई थी। वह दिल्ली की हिफाजत के लिए गुर्जरों को भी एक नई ताकत बनाना चाहता था। फौज की भर्ती करने और ट्रेनिंग देने के लिए नजीबुद्दौला ने 'नबीदाद खां को राव दरगाही सिंह के यहां तैनात किया था।' नबीदाद खां ही गौहर खां के दादा थे। यह तंवर राजपूत थे और सदियों पहले इन के पूर्वज इस्लाम अपनाकर मुसलमान हो गए।

राव दरगाही सिंह गांव कटेहरा से आकर 'दादरी बसाने में लगे हुए थे। वह यहां किला (कचहरी) बाजार आदि बनवा रहे थे और नबीदाद खां चन्द नौजवानों को फौजी ट्रेनिंग दे रहे थे।

उसी दौरान अबदाली की हत्या हो जाने से नजीब की ताकत कमजोर हो गई। नई ताकत अभी तैयार भी नहीं हो पाई थी। मौके का फायदा उठाते हुए गाजियुद्दीन और मराठों ने मिलकर हमला कर दिया और दिल्ली पर दोबारा मराठों का कब्जा हो गया। नजीबुद्दौला के साथ नबीदाद खां भी लापता हो गए। नबीदाद खां का बेटा 'रहीम खां' और पत्नी–जब यह दोनों मां बेटे दादरी से अपने गांव संभल जाने लगे तो राव दरगाही सिंह ने उन्हें दादरी में ही रहकर अपना काम शुरू रखने के लिए कहा कि अब यह काम हमारी तरफ से शुरू रखो।

रहीम खां और राव रोशन सिंह हम उमर थे दोनों में गहरा दोस्ताना भी था। दोनों एक साथ ही कहीं आते–जाते थे। राव दरगाही सिंह ने रहीम खां को पांच

सौ बीघा जमीन कटेहरा में ही दे दी थी।

अबदाली से हारने के बाद अगरचे मराठों ने दिल्ली पर दोबारा कब्जा कर लिया था, लेकिन उस हार से उन्होंने फिर भी कोई सबक नहीं सीखा और उन्होंने गैर मराठों को फिर भी अपनी फौज में शामिल नहीं किया था।

आखिर ११ सितंबर १८०३ में मराठे छलेरा गांव के पास अंग्रेजों के मुकाबले में हार गए। जबकि मराठे बादशाह से दिल्ली की हिफाजत करने का १३ लाख रुपये सालाना लेते थे। एक मायने में वह शाह आलम के किराए के फौजी थे।

लेकिन अंग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा करने के बाद बादशाह की ही पेंशन मुकर्रर करके बादशाह को ही अपना पेंशनर बना दिया था।

अंग्रेजों ने राव दरगाही सिंह की अमलदारी में छेड़छाड़ करके १३३ गांव की अमलदारी को सिर्फ उनकी जिंदगी तक कर दी। १८१६ ई. में राव दरगाही सिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने १३३ गांव अपनी तहसील में लेकर उनके बड़े बेटे राव रोशन सिंह को वारिस मानते हुए ३०० रुपये महीना उनकी पेंशन मुकर्रर कर दी।

अंग्रेज हिन्दुस्तान में व्यापारी बनकर आए थे। उन्होंने अपनी फर्म का नाम ईस्ट इंडिया कंपनी रखा था। हालांकि अंग्रेज भी यूरोप के कई मुलकों के रहने वाले थे। जोकि अपना अपना कारोबार अलग–अलग करते थे। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी नाम से उनका अपना व्यापार संघ था। उनमें वह तमाम बातें थीं जो एक व्यापारी और सूद–खोर महाजन में होती है। जिसे सिर्फ माल व दौलत चाहिए चाहे वह किसी भी तरीके से हासिल हो। अंग्रेजों ने भी हिन्दुस्तान में वह तमाम तरीके अपनाए। उन्होंने हिन्दुस्तान में पैदा होने व तैयार होने वाली हर चीज का व्यापार किया। उससे भी आगे बढ़कर उन्होंने हिन्दुस्तानी नौजवानों को भर्ती करके अपनी–अपनी फौजें बना ली थीं जिन्हें वह देशी रजवाड़ों को किराए पर देते थे और रजवाड़ों से फौज के किराए के बदले गांवों की अमलदारी हासिल कर लेते थे। हालांकि दोनों तरफ से मरने वाले तो हिन्दुस्तानी ही होते थे। लेकिन रजवाड़ों के गांव अंग्रेजों के कब्जे में चले जाते थे।

हिन्दुस्तानी नौजवानों को फौज में भर्ती होने को प्रेरित करने के लिए अंग्रेजों ने भांड छोड़ रखे थे जो गांव–गांव गली–गली गाते फिरते थे। कि

भर्ती हो जारे रंगरूट–तेरे द्वार खड़ी खुशहाली
यहां तो पहने फटे पुराने वहां पहनेगा सूट।
यहां फिरे हैं नंगे पांव वहां पहनेगा बूट।
भर्ती हो जा रे

हालांकि उस जमाने में भी हिन्दुस्तान को दुनिया में सोने की चिड़िया कहते थे।

शहीद गौहर खां

दिल्ली के बादशाह शाह आलम का वजीर नजीबुददौला बहुत दूर की सोच रखता था। इसी के मद्देनजर उसने दिल्ली के चारों तरफ आबाद कौमों में से जो ज्यादा–ज्यादा तादाद में थी उन्हें दिल्ली दरबार से राव की पदवी और कुछ गांवों की अमलदारी भी दिलवाई थी।

वह जानता था कि अबदाली ने दिल्ली पर हमला किया था तो मराठों के अलावा दिल्ली के पास पड़ोस का कोई भी अफराद (व्यक्ति) दिल्ली की हिफाजत के लिए मैदान में नहीं आया था।

क्योंकि दिल्ली की हिफाजत सिर्फ मराठों के इख्तयार में थी। वह इसके लिए बादशाह से १३ लाख रुपये सालाना लेते थे। मराठों ने अपनी फौज में किसी गैर मराठों को भी भर्ती नहीं किया था।

वजीर नजीबुद्दौला ने बल्लभगढ़ और कुचेसर में जाटों को और दादरी में राव दरगाही सिंह को राव की पदवी और १३३ गांवों की अमलदारी दिलाई थी। वह दिल्ली की हिफाजत के लिए गुर्जरों को भी एक नई ताकत बनाना चाहता था। फौज की भर्ती करने और ट्रेनिंग देने के लिए नजीबुद्दौला ने 'नबीदाद खां को राव दरगाही सिंह के यहां तैनात किया था।' नबीदाद खां ही गौहर खां के दादा थे। यह तंवर राजपूत थे और सदियों पहले इन के पूर्वज इस्लाम अपनाकर मुसलमान हो गए।

राव दरगाही सिंह गांव कटेहरा से आकर 'दादरी बसाने में लगे हुए थे। वह यहां किला (कचहरी) बाजार आदि बनवा रहे थे और नबीदाद खां चन्द नौजवानों को फौजी ट्रेनिंग दे रहे थे।

उसी दौरान अबदाली की हत्या हो जाने से नजीब की ताकत कमजोर हो गई। नई ताकत अभी तैयार भी नहीं हो पाई थी। मौके का फायदा उठाते हुए गाजियुद्दीन और मराठों ने मिलकर हमला कर दिया और दिल्ली पर दोबारा मराठों का कब्जा हो गया। नजीबुद्दौला के साथ नबीदाद खां भी लापता हो गए। नबीदाद खां का बेटा 'रहीम खां' और पत्नी–जब यह दोनों मां बेटे दादरी से अपने गांव संभल जाने लगे तो राव दरगाही सिंह ने उन्हें दादरी में ही रहकर अपना काम शुरू रखने के लिए कहा कि अब यह काम हमारी तरफ से शुरू रखो।

रहीम खां और राव रोशन सिंह हम उमर थे दोनों में गहरा दोस्ताना भी था। दोनों एक साथ ही कहीं आते–जाते थे। राव दरगाही सिंह ने रहीम खां को पांच

सौ बीघा जमीन कठेहरा में ही दे दी थी।

अबदाली से हारने के बाद अगरचे मराठों ने दिल्ली पर दोबारा कब्जा कर लिया था, लेकिन उस हार से उन्होंने फिर भी कोई सबक नहीं सीखा और उन्होंने गैर मराठों को फिर भी अपनी फौज में शामिल नहीं किया था।

आखिर ११ सितंबर १८०३ में मराठे छलेरा गांव के पास अंग्रेजों के मुकाबले में हार गए। जबकि मराठे बादशाह से दिल्ली की हिफाजत करने का १३ लाख रुपये सालाना लेते थे। एक मायने में वह शाह आलम के किराए के फौजी थे।

लेकिन अग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा करने के बाद बादशाह की ही पेंशन मुकर्रर करके बादशाह को ही अपना पेंशनर बना दिया था।

अंग्रेजों ने राव दरगाही सिंह की अमलदारी में छेड़छाड़ करके १३३ गांव की अमलदारी को सिर्फ उनकी जिंदगी तक कर दी। १८१६ ई. में राव दरगाही सिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने १३३ गांव अपनी तहसील में लेकर उनके बड़े बेटे राव रोशन सिंह को वारिस मानते हुए ३०० रुपये महीना उनकी पेंशन मुकर्रर कर दी।

अंग्रेज हिन्दुस्तान में व्यापारी बनकर आए थे। उन्होंने अपनी फर्म का नाम ईस्ट इंडिया कंपनी रखा था। हालांकि अंग्रेज भी यूरोप के कई मुलकों के रहने वाले थे। जोकि अपना अपना कारोबार अलग–अलग करते थे। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी नाम से उनका अपना व्यापार संघ था। उनमें वह तमाम बातें थीं जो एक व्यापारी और सूद–खोर महाजन में होती है। जिसे सिर्फ माल व दौलत चाहिए चाहे वह किसी भी तरीके से हासिल हो। अंग्रेजों ने भी हिन्दुस्तान में वह तमाम तरीके अपनाए। उन्होंने हिन्दुस्तान में पैदा होने व तैयार होने वाली हर चीज का व्यापार किया। उससे भी आगे बढ़कर उन्होंने हिन्दुस्तानी नौजवानों को भर्ती करके अपनी–अपनी फौजें बना ली थीं जिन्हें वह देशी रजवाड़ों को किराए पर देते थे और रजवाड़ों से फौज के किराए के बदले गांवों की अमलदारी हासिल कर लेते थे। हालांकि दोनों तरफ से मरने वाले तो हिन्दुस्तानी ही होते थे। लेकिन रजवाड़ों के गांव अंग्रेजों के कब्जे में चले जाते थे।

हिन्दुस्तानी नौजवानों को फौज में भर्ती होने को प्रेरित करने के लिए अंग्रेजों ने भांड छोड़ रखे थे जो गांव–गांव गली–गली गाते फिरते थे। कि

भर्ती हो जारे रंगरूट–तेरे द्वार खड़ी खुशहाली
यहां तो पहने फटे पुराने वहां पहनेगा सूट।
यहां फिरे हैं नंगे पांव वहां पहनेगा बूट।
भर्ती हो जा रे

हालांकि उस जमाने में भी हिन्दुस्तान को दुनिया में सोने की चिड़िया कहते थे।

लेकिन वह सोने की चिड़िया जमीनदारों व सूदखोर महाजनों की तिजोरीनुमा पिंजरों में बंद पड़ी थी। बल्कि रजवाड़ों के राजा भी महाजनों से उधार लेते थे।

आम हिन्दुस्तानी तो तमाम गर्मी बरसात एक ही लंगोटी में गुजार देता था। सर्दी में वह फटी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़ लेता था। जूती तो बहुत से लोग शादी में भी दूसरों से मांग कर ब्याह रचा लेते थे।

उस वक्त के हिन्दुस्तानी अवाम को देखने के लिए महात्मा गांधी जी की तस्वीर देखी जा सकती है। क्योंकि महात्मा गांधी जी जब हिन्दुस्तान की आजादी का आंदोलन लेकर उठे तो उन्होंने यह कहकर कपड़े पहनने छोड़ दिए थे कि जिनकी आजादी के लिए मैंने यह आंदोलन शुरू किया है। जब तक उनको भी कपड़े हासिल नहीं होंगे मैं भी कपड़े नहीं पहनूंगा।

यह कपड़े ही तो थे जिन्होंने हिन्दुस्तानी नौजवानों को अंग्रेजों की फौज में भर्ती होने के लिए प्रेरित किया था। फौज और पुलिस में भर्ती होने वालो के लिए खाकी नेकर बुर्सेट और सर पे टोप यह खास वर्दी थी। पुलिस में थानेदार से ऊंची पोस्ट नहीं थी। थानेदार को खाकी नेकर बुर्सेट और टोप और मौजे बूट खास वर्दी थी। पुलिस के सिपाही को टोप की जगह टोपी होती और हाथ में लाठी। अपनी हिन्दुस्तानी पुलिस के लिए अंग्रेजों की ईजाद की गई यह वर्दी अपने आप में खासी रौबदार थी। खाकी नेकर सर पे टोपी और हाथ में लाठी लेकर एक भी सरकारी आदमी किसी भी गांव में आ जाता तो भगदड़ मच जाती और गांव का जमींदार भी अपने अर्दलियों के कांधों पर मूंढे उठवाए दौड़ा चला आता और सलूट मारकर अर्ज करता कि सरकार आपने आने का क्यों कष्ट किया सिर्फ खबर भेज देते दास कचहरी में ही हाजिर हो जाता।

उस वर्दी का रौब और दबदबा हिन्दुस्तानियों पर इस कदर हावी था, कि जब हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने के नाम पर आर.एस.एस. का संगठन बनाया गया तो उस के कार्य कर्ताओं के लिए वही खाकी नेकर बुर्सेट टोपी और लाठी यही चार चीजें वर्दी के लिए पसंद की गई।

देखा जाए तो आज़ादी के साठ साल बाद भी उस वर्दी का वही रौब कायम है जो अंग्रेजों के वक्त में था। अब भी उस वर्दी को पहने शहर में दस बीस आदमियों को अगर एक साथ सड़क पर आते जाते देख लिया जाता है तो शहर का दिल किसी अनहोनी हो जाने के डर से धड़कने लगता है। पुलिस उनकी अगवानी में लग जाती है। शहर का बड़ा अफसर उनकी नाराजगी का सबब मालूम करने दौड़ा चला आता है।

मैं भी गुप्तगु करते–करते आजाद भारत की बात करने लगा। गुप्तगु चल रही

थी गुलाम भारत की जब इसका नाम हिन्दुस्तान था और खाकी नेकर का बोल बाला था और अंग्रेज भी उसके जादू से लार्ड गवर्नर बन गए थे। उस वक्त मराठे भी अपनी राह भूल कर अंग्रेजों की नकल करने लगे। मराठे मुगलिया हुकूमत से टकराए थे, हिन्दुस्तान के शहशांह कहलाने का ख्वाब लेकर लेकिन दिल्ली तक आते–आते वह भी किराए के फौजी बन कर रह गए।

मराठे भी किराया लेकर दिल्ली की हिफाजत करने लगे जोकि १३ लाख रुपये सालाना बादशाह से लेते थे। लेकिन खाकी नेकर से वह भी थर्राते थे। ११ सितंबर १८०३ ई. में जब अंग्रेजों के खाकी नेकर वाले दिल्ली की तरफ आए तो दिल्ली का किराया लेकर हिफाजत करने वाले मराठे उन्हें देखकर ऐसे भागे कि भारतीय इतिहासकारों को आज तक उनका पता नहीं चला, कि अब वह किराए पर किस की हिफाजत कर रहे हैं।

दिल्ली हिन्दुस्तान का दिल मानी जाती है। अंग्रेजों का दिल्ली पर कब्जा कर लेना तमाम हिन्दुस्तान पर कब्जा कर लेना था।

१८०३ ई. से १८५७ तक अंग्रेज जब तमाम बंदोबस्त करके फारिग हुए तो उन्हें अपनी वफादार काली पलटन के शुद्धीकरण का ख्याल आया। काली पलटन को हिन्दुस्तानी धर्म व मजहब से भी बिल्कुल पाक साफ करने के लिए गोरे अंग्रेजों ने अपने काले वफादारों के लिए गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस स्पेशल तौर से बनवाए जो मुंह से तोड़कर बंदूक में लगाए जाते थे।

हालांकि काली पलटन ही हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की एक ऐसी वफादार ताकत थी जो अंग्रेजों के कहने से पहले ही हिन्दुस्तानियों को गोली मार देती थी। औरतों के पेट पर बूटों की ठोकर मार देना बच्चों को बूटों से कुचल देना उनकी आम आदत में शामिल हो चुका था। काली पलटन में हिन्दू मुसलमान दोनों ही शामिल थे। लेकिन अंग्रेजों की काली पलटन में आने के बाद इन का धर्म ईमान कुछ भी नहीं बचा था। थोड़ी बहुत आपसी खुददारी बची थीं कि दूसरे क्या कहेंगे जब अंग्रेजो ने चर्बी लगे कारतूस इन्हें इस्तेमाल करने को दिए तो हिन्दू ने मुसलमान की तरफ और मुसलमानों ने हिन्दुओं की तरफ देखा। हालांकि फौज में रहकर यह गोश्त खोर और शराबनोशी भी करते थे। लेकिन अब चर्बी लगे कारतूसों की बात जिनमें गाय और सुअर की चर्बी थी और वह मुंह से तोड़ कर बंदूक में लगाने थे। तब शायद दिल के किसी कोने में छुपी आस्था जागी या यह कि एक दूसरे को क्या मुंह दिखाएंगे। हिन्दू सिपाहियों ने कारतूस छूने से मना कर दिया कि हमारे धर्म में गाय पूज्य हैं। अंग्रेजों ने मुसलमान सिपाहियों को समझाया कि कारतूसों में ऐसे किसी भी जानवर की चर्बी नहीं है जो तुम्हारा मजहब मना करता हो। इस पर

मुसलमान सिपाहियों ने भी यह कहकर मना कर दिया कि चर्बी किसी भी जानवर की सही लेकिन जो हमारे दूसरे साथियों का फैसला है वही हमारा भी है।

अंग्रेज अफसरों ने काली पलटन की वर्दी उतरवा कर जेल में बंद कर दिये। यह ६ मई १८५७ ई. की बात है। १० मई को मेरठ के चारों तरफ के चंद गांवों के लोगों ने जेल पर हमला करके उन सिपाहियों को छुड़ा लिया। हथियार खाना लूट लिया, अंग्रेजों को मारा पीटा गया, सरकारी इमारतें कचहरी आदि जला दी गई, शहर में लूट मार भी की गई। फिर ये सिपाही अपने-अपने इलाकों की तरफ चल पड़े। रास्ते में जहां अंग्रेज मिलते उन्हें मारते-पीटते उनके कोठी बंगलों में आग लगाते १२ मई १८५७ ई. में सिपाही सिकन्द्राबद आ गए।

काली पलटन के ये सिपाही जहां से गुजरते थे गांवों के लोग भी उनके साथ हो जाते थे। सिकन्द्राबद में आते ही उन सिपाहियों ने तहसील थाना व अंग्रेजों के बंगले आदि में तोड़ फोड़ व आगजनी कर दी अंग्रेजों को भी मारा पीटा गया।

किसान लोग जागीरदारों और सूदखोर महाजनों से दुखी थे ही इसलिए इन लोगों को भी लूटा गया।

कुछ याद गारे शहरे सितमगर ही ले चलें।
आए हैं इस शहर में तो पत्थर ही ले चलें।

इसके मिसदाक देहात के लोगों की भीड़ ने सिकन्द्राबाद की मंडी में लदी खड़ी तीन गाड़ी खांड भी लूट ली।

१० मई १८५७ ई. को शुरू हुए इस सान्हे को आज हम आजादी की पहली जंग कह सकते हैं। लेकिन जिन लोगों ने इसे शुरू किया उनके पास न कोई प्लान था न तैयारी। कदम उठाने के बाद ख्याल आया कि अब क्या किया जाए। फिर भी जो हुआ बेहतर ही था। उसने बाद में आजादी की जंग लड़ने वालों की रहनुमाई ही की। मेरठ से लौटते काली पलटन के कुछ सिपाही जब धौलाने में आए तो यहां भी उन्होंने थाने आदि में आग लगा दी। अंग्रेजी झंडा जला दिया। वहां के हिन्दू मुसलमान राजपूतों ने मिलकर जिसमें देहरा, नहाल, मसूरी आदि के लोग भी शामिल थे दिल्ली जाकर मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर जो उस वक्त अंग्रेजों का पेंशनर था उसे हर तरह की मदद का यकीन दिलाकर आजादी का ऐलान करा दिया। बादशाह ने भी उसी वक्त मालागढ़ के नवाब वलीदाद खां को दोआब का सूबेदार मुकर्रर कर दिया था। उसने भागदौड़ कर के दिल्ली की हिफाजत के लिए भटनेरवासियों को तैयार किया। अंग्रेज भी अपनी फौज और तोप खाना लेकर दिल्ली की तरफ बढ़े।

३० मई को अंग्रेजी फौज ने गाजियाबाद हिंडन नदी के पुल के दाई तरफ मोर्चा

संभाल लिया था। बादशाह की फौज नदी के पश्चिमी किनारे पर जहां अब मोहन नगर आबाद है आकर जम गई। नदी के पूर्वी किनारे अंग्रेजी फौज के दाई तरफ क्रांतिकारियों ने मोर्चा संभाल लिया था। क्रांतिकारियों की कमान दादरी के राव रोशन सिंह और उनके बेटों ने संभाल रखी थी। ३० और ३१ मई को दोनों तरफ से लड़ाई होती रही। दोनों तरफ के काफी आदमी मारे गए। अंग्रेजी फौज आगे न बढ़ सकी तो मेरठ की तरफ लौट गई। कुछ फौज ने क्रांतिकारियों को हिन्डन नदी पर ही उलझाए रखा बाकी अंग्रेजी फौज ने बागपत और बादली के रास्ते सिख रेजीमेंट को लेकर दिल्ली की घेराबंदी कर दी। बहादुर शाह जफर के वफादार समझे जाने वाले लोगों ने ही बादशाह को गिरफ्तार करा दिया। बल्लभगढ़ नरेश नाहर सिंह भी अंग्रेजो से मिल गए और राव रोशन सिंह और उनके बेटों को धोखे से गिरफ्तार करा दिया। अंग्रेजों ने मुशके बांधकर वे हाथियों से कुचलवा दिये। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने बुलन्दशहर के चारों तरफ नवाबों व नरेशों को साथ लेकर मालागढ़ के नवाब वलीदाद खां का घेराव कर दिया।

काली पलटन के भागे हुए सिपाहियों को पकड़ने के लिए भी अंग्रेजों ने भटनेर के गांवों में दबिश शुरू कर दी थी। गांव बढपुरा में मुकाबले में गांव के कई आदमी मारे गए कई गिरफ्तार करके बुलन्दशहर जेल में बंद कर दिए गए थे। एक रोज रात में जेल पर हमला करके कई गांवों के लोग उन्हें छुडाने में कामयाब हो गए। इसके बाद से अंग्रेज भी गिरफ्तार किए गए लोगों को जेल में बंद करने की बजाए गांवों में ही गिरफ्तार करके लोगों को पेड़ों पर फांसी देने लगे थे।

तिलबेमपुर में ३० हजार भटनेरवासियों की महापंचायत में यही बात रखी गई थी कि जो कदम बगैर सोचे बगैर किसी प्लान और तैयारी के उठाया गया है उसका अंजाम अब क्या होगा और अब आगे क्या कदम उठाया जाए क्योंकि अंग्रेजों के पिट्ठू ओर मुखबिर कदम-कदम पर मौजूद हैं। वह जिस की तरफ भी उंगली उठा देंगे अंग्रेज उसी को फांसी चढ़ा देंगे। इसलिए यह ही तय किया गया कि हम भी अपना भटनेर का राजा चुने और उसकी कमान में लड़े क्योंकि मौत तो अब बगैर लड़े भी आनी है। क्यों न फिर कौम और देश की राह में चल कर ही मौत कबूल करें। इसी मकसद से राव घराने से ही राव उमराव सिंह को दादरी भटनेर रियासत का राजा चुन लिया गया।

राव उमराव सिंह दादरी भटनेर रियासत के राजा तो चुन लिए गए थे लेकिन यहां राजा और रियासत जैसा कुछ भी नहीं था। अब दिल्ली के बादशाह और मालागढ़ के नवाब से भी कोई मदद नहीं मिल सकती थी। यह दोनों भी अंग्रेजों से घिरे हुए थे उन्हें भी खुद मदद की जरूरत थी।

खुर्जा–शिकारपुर, पहासु, खानपुर, जलेसर आदि रियासतें भी अंग्रेजों की तरफ हो गई थी। भटनेर के जागीरदार और महाजन तो अंग्रेजों के साथ थे ही। अंग्रेजों के पास तोपे बंदूकें तलवारें और ट्रेनिंग याफता फौज का मुकाबला यह निहत्थे किसान मजदूर कैसे कर सकेंगे जिनका खून पहले ही निचोड़ा जा चुका था।

यह खेती करने के औजार दरांती जेली फावड़े कुल्हाड़ी या बल्लम गंडासों आदि से बंदूकों का मुकाबला कैसे कर सकेंगे।

तिल बेगमपुर की महा पंचायत में राव उमराव सिंह को दादरी भटनेर रियासत के राजा चुने जाने के बाद हर एक गांव से जो मुख्य क्रांतिकारी चुने गए थे। यह उनकी खुफिया मिटिंग थी। जो गांव कठेहरा में गुप्त जगह पर की जा रही थी। उसमें सभी अपनी–अपनी राय दे रहे थे। किसी ने कहा कि हलों की फालिया निकाल कर उनकी तलवारें बनवा ली जाए। किसी ने कहा कि फालियों के बल्लभ भाले बलकटी आदि बनवाई जाएं।

दादरी के चौधरी गोहर खां और मदारा खां यह दोनों बाप बेटे भी मौजूद थे। सभी जानते थे कि गौहर खां फौजी टेक्निक के जानकार है। ज्यादातर लोग उन्हें गौहर मल भी कहते थे। जो कि खामोशी से सभी की राय सुन रहे थे। तभी किसी ने कहा कि गौहर मल जी आप भी कोई मशवरा रखे। गोहर खां बोले भाइयों में बड़े गौर से आप सभी भाईयों की राय सुन रहा हूँ और उस पर गौर भी कर रहा हूँ और अपनी राय भी आप सभी के सामने पेश करने पर गौर कर रहा हूँ। देखिये हल की फालियों आदि से भाले आदि तो आसानी से बनाए जा सकते हैं। लेकिन तलवारे बनाने में वक्त भी और मेहनत भी ज्यादा होगी और लागत भी ज्यादा आएगी फिर भी बंदूकों का मुकाबला नहीं हो सकेगा।

मेरी समझ में एक तरीका है जो ऐसे वक्त में आसान और कामयाब भी हो सकता है। बल्लम भाले बलकटी आदि तो हम बनवा ही लें अलावा इसके जीटी रोड पर जो टेलीफोन के तार और खंभे लगे हुए हैं उन्हें लाकर हम उनसे ऐसी तोपे बनवा सकते हैं जिसे हमारे एक क्रांतिकारी भी अपने कांधे पर आसानी से उठा ले जाकर कहीं भी मोर्चा बना सकता है। इस एक तोप पर ज्यादा से ज्यादा चार आदमी काफी होंगे और आठ दस तोपें सैकड़ों बंदूक वालों का मुकाबला कर सकती हैं। और आमने–सामने हो जाने पर भाले व बलकटी आदि से काम लिया जा सकेगा।

सभी ने गौहर खां की इस तजवीज को पसंद किया और कहा कि हम इसमें क्या हिस्सा ले सकते हैं हमारे लिए वह काम बताएं। तभी लुहारली के मंजलिस जमींदार ने कहा कि मैंने कल ही गांव के लड़कों को बुलाकर उनकी जेली सेना का

गठन किया है। मैं आज रात ही खंभे और तार उखड़वा कर भिजवा दूंगा। चिठहरा के फत्ते सिंह ने कहा कि गाड़ियां मैं जुड़वा लाऊंगा। कठेहड़ा और चिठहड़ा के बीच झेरी के पास घने पेड़ों की जगह तय की गई। दूसरे गांवों से आने वाले सभी क्रांतिकारियों से कहा गया कि वह अपने अपने गांव में अरहर की लकड़ी इस तरह जलवाएं कि उनके कोयले बन जाएं राख न बने और उन्हें चक्कियों में पिसवा लाएं। कुछ लोगों को और सामान बताए गए जो सिकन्द्राबाद और गाजियाबाद से लाने थे।

गौहर खां ने अपने बेटे मदारा खां को चन्द लुहारों के नाम बताकर कहा कि यह सभी कल सुबह सूरज निकलने से पहले अपने–अपने औजार लाकर झीरी में आ जाएं। सभी हाजरीन को यह बातें बताने के बाद अगली रात को अपने साथ चार–चार नौजवान हर गांव से लाने के लिए कहा, ताकि उन्हें वह तोपें चलानी भी सिखाई जा सकें। फिर वह ही अपने साथियों को बाद में सिखाते रहेंगे।

दूसरे दिन से सभी अपने सौंपे हुए कामों को अंजाम देने में लग गए। गांव–गांव में लुहारों की भट्टियां चलने लगीं और वह भाले, बल्लम, बलकटी, आदि बनाने लगे।

टेलीग्राफ के तार तो पहले से ही काटे जा चुके थे फिर भी चार पांच खम्बे कहीं कहीं से उखाड़े गए ताकि खम्बे उखड़ने का किसी को शक भी न हो सके।

. सूरज निकलने से पहले ही मदारा खां चंद लुहारों को लेकर झीरी में पहुंच गए थे। गौहर खां भी अपने भाई और भतीजों को साथ ले गए और खंभों की नाप–तोल करके काटने के लिए निशान लगा दिए सभी अपने–अपने काम में लग गए। चन्द नौजवान घुड़सवार इधर–उधर सड़क और खेतों में आने जाने वालों पर नजर रखने के लिए मुकर्रर कर दिए गए।

शाम तक चन्द तोपें तैयार कर ली गई। रात होने पर जंगल में ही चन्द खास अफराद के सामने उनमें पहचान वाली चीजें भरकर ट्राई ली गई फिर सुबह उन चीजों को तलाश करके तोपों की मार की दूरी का अंदाजा किया गया। उसके बाद पुरी मुसतैदी से काम को शुरू रखा गया। गौहर खां उन्हें तैयार कराने में लगे रहते और मदारा खां गांवों से आने वाले अपने हम उम्र नौजवानों को तोपें चलाने की ट्रेनिंग देते।

कहते हैं कि बारूद की खोज चीन में हुई थी और शहशांह बाबर हिन्दुस्तान में तोपें लाया था। मीजाइल टीपू सुल्तान ने इजाद की थी। लेकिन जब चौधरी गौहर खां ने टेलीग्राफ के खंभों की तोपें और अरहड़ की लकड़ी से बारूद बनाकर भटनेर के जाबांज क्रांतिकारियों के हवाले की तो उनके होंसले आसमान छूने लगे।

लेकिन दादरी भटनेर के गुर्जर किसानों की हिम्मत और बहादुरी की भी इतिहास में दूसरी मिसाल नहीं। यह भी जेली दरांती जैसे खेती के औजारों के बल पर ही ईस्ट इंडिया कंपनी राज से टक्कर लेने मैदान में आ गए थे। जब कि ईस्ट इंडिया कंपनी तमाम यूरोप के व्यापारियों का व्यापार संघ था। इससे टकराना तमाम यूरोप से टकराना था।

कहते हैं कि सबसे बड़ा हथियार वक्त का......होता है। हार जीत नसीब का खेल है। लेकिन इंसान का होसला और बहादुरी अपनी जगह कायम होती है। यह कम बहादुरी की बात नहीं थी।

१२ मई १८५७ को अंग्रेजों के हाथों से निकली दिल्ली १४ सितंबर १८५७ में फिर से अंग्रेजों के कब्जे में आ गई थी। लेकिन दादरी में अंग्रेज २० सितंबर १८५८ के बाद ही आ सके थे। दिल्ली के बाद अंग्रेजों ने मालागढ़ के नवाब वलीदाद खां का किला गिराने के लिए कलकत्ते से अंग्रेज इंजीनियर बुलाए थे उस दौरान अंग्रेज बुलन्दशहर से सिकन्द्राबाद दादरी के रास्ते से दिल्ली नहीं जा सकते थे। क्योंकि भटनेर के क्रांतिकारी अपनी छोटी–छोटी तोपों से अंग्रेजी फौजों को मार भगाते थे।

> उस वक्त की सरकारी दस्तावेज में लिखा है कि २० सितंबर १८५८ को कर्नल ग्रीथेड ने दादरी और आसपास के गांवों में तोपों से हमला करके आग लगवा दी थी।
>
> गाजियाबाद का इतिहास वह ३० मई पृष्ठ २६

मैंने भटनेर की गौरव गाथा दादरी १८५७ की कहानी बचपन में अपने दादा श्री करीम बख्श जी से सुनी थी। जब मुझे मालूम हुआ कि गौहर खां उनके पर दादा और मदारा खां उनके दादा थे तो इसे सुनने का मुझे लगाव हो गया। फिर जब भी मैं दादा जी को फुर्सत में देखता और सवाल कर देता। दादा जी फिर गौहर जी का क्या हुआ और मदारा खां कहा गए। दादा जी ने बताया।

गोरा पलटन बुलन्दशहर की तरफ से गांवों में तोपों से आग लगाती लोगों को मारती आ रही थी। चिठहेड़ा के पास गौहर खां अपने भाई भतीजों और साथियों के साथ अंग्रेजी फौजों का मुकाबला करते हुए मारे गए और मदारा खां किसी तरह बच निकले। उस वक्त औरतें बच्चे और बूढ़े गांवों से जंगलों में चले गए थे। गौहर खां के यहां से औरतें और बच्चों भी दादरी के जंगल में चले गए थे। जब अंग्रेजों ने दादरी में आग लगा दी। मदारा खां की ससुराल गांव सिकेड़ा में थी रात होने पर यह सभी औरतें और बच्चे गांव सिकेड़ा की तरफ चल पड़े। इनमें गौहर खा की

पत्नी यानी मदारा खां की मां बहन–पत्नी और तीन बेटे–बड़ा लड़का १० वर्ष मंझला ६ वर्ष छोटा ३ वर्ष। १० वर्ष वाला लड़का अपनी दादी और फूफी के साथ–साथ भागते हुए काफी दूर निकल गए थे। मदारा खां की पत्नी के साथ दो बच्चे थे। छोटे को गोद में ले रखा था और ६ वर्ष वाले का हाथ थाम रखा था जो दौड़ते हुए में जमीन पर घिसट जाया करता था। जब मदारा की पत्नी से दो बच्चों को साथ लेकर नहीं दौड़ा गया और सास ननद जंगल में काफी दूर निकल गई। तो उन्होंने घिसटने वाले लड़के को रास्ते में ही छोड़ दिया और दौड़कर सास ननद को यह सब बताया। उस वक्त दादरी से सिकेड़ा गांव तक का जंगल ढाक के पेड़ से भरा पड़ा था और यह ढकिया कहलाता था। रात के अंधेरे में तो पास का आदमी भी दिखाई नहीं देता था रास्ता भटकने और जंगली जानवरों का भी भी डर कम नहीं था।

इंसान पर जब बड़ी मुसीबत पड़ती है तो वह छोटी–छोटी मुसीबतों की परवाह नहीं करता कम से कम वहां जंगली जानवरों का खतरा तो मौजूद था ही। लेकिन मदारा खां की बहन को जब पता चला कि भाभी बच्चे को रास्ते में ही छोड़ आई है तो उसने कहा कि हम इन बच्चों को बचाने के लिए ही तो भाग रहे हैं। तुम्हें जाना हो तो जाओ मैं तो बच्चे को साथ लेकर ही आऊंगी। मदारा खां की बहन ढाक के जंगल में वापस लौटीं और बच्चे को आवाज देते हुए उसे ढूंढ़ कर साथ ले गई तब तक मां और भाभी भी वही रूकी रहीं। इस वाकये से उस घिसटने वाले बच्चे को घसीटा ही कहने लगे थे। यही करीम बख्श के बाप हुए। यानी मेरे (यामीन दादरवी के) पर दादा।

१८५७ ई. की इस आजादी की जंग में भटनेरवासियों ने जिस कदर बुलन्द बहादुरी और वतन परस्ती के जज्बे का इजहार किया था। अंग्रेजों ने भी २० सितंबर १८५८ के बाद उन क्रांतिकारियों को बहादुरी का इनाम देने में किसी तरह की कंजूसी नहीं दिखाई। धौलाना में १८ क्रांतिकारी राजपूतों को पकड़कर पहले गोलियां मारी गई। फिर उनके घर वालों और गांव वालों को उन पर थूकने को मजबूर किया गया। फिर १८ ही कुत्ते मारे गए और इन कुत्तों के साथ एक ही गड्ढे में क्रांतिकारियों को भी दफन किया गया।

जारचा और कई गांवों को जब्त करके अपने पिठ्ठुओं व हाथों नीलाम किया गया। जारचा बागपत के नवाब खुरशेद खां और राय बहादुर लाला सुलतान मल (कश्मीरी गेट दिल्ली) को एक लाख रुपये में नीलाम किया गया। दीगर गांव दूसरे पिट्ठुओं को नीलाम किए गए। भटनेर के गुर्जर गांवों में आग लगा दी गई जमीनें जब्त की गई क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके सरेआम पेड़ों पर फांसीयां दी गई।

गौहर खां तो अपने भाई और भतीजों के साथ मारे ही गए थे। किसी तरह मदारा खां बच निकले थे। वे छुपते–छुपाते रातों के अंधेरे में गांव सिकेड़ा अपनी ससुराल पहुंच गये। वह इस कदर डरे हुए थे कि दिन रात खेतों में ही रहते थे और वहां के किसी आदमी से ज्यादा मिलते भी नहीं थे। कभी–कभी रात के वक्त ही गांव में जाते। एक रात वह अपने सर पर भुस की गठरी उठाए जंगल से गांव आ रहे थे कि नाले पर पैर फिसल गया और गठरी से गला दब गया ओर वहीं मौत हो गई। दादा करीम बख्श जी ने बताया कि सुबह जब गांव वालों ने भूसा तोला तो वह सात मन था यानी वह इतने ताकत वर थे। यह बात १८६५ ई. की रही होगी।

दादा घसीटा खां अपने बड़े भाई मौला बख्श के साथ १८६० में फिर से दादरी आ गए। तब दादा करीम बख्श १० वर्ष के थे दोनों भाइयों ने दादरी आकर खेती शुरू की। कुछ दिन बाद ही उन पर बुलन्दशहर कचहरी में हाजिर होने के समन आ गए। उस वक्त भी अंग्रेजों का डर तीसरी पीढ़ी वालों को इस कदर था कि मौलाबख्श तो बम्बई चलें गए फिर लौट कर न आए। दादा घसीटा दिल्ली जा बसे और १६०५ में उनकी मृत्यु हो गई। दादा करीम बख्श जी बताया करते थे कि कटेहरा गांव के उतर–पश्चिम उनकी जमीन आज भी मदारा वाली डेहर के नाम से जानी जाती है। लेकिन मदारा कौन थे यह कोई नहीं जानता।

जो तेरे लिए मिट गए
बरबाद रहे हैं
ऐ देश बता क्या तुझे
वह याद रहे हैं

दादरी 1857 की कहानी काजी कमालुद्दीन की जुबानी

१८५७ की क्रांति के असफल होने के बाद अंग्रेजों की जान में जान आई। तब उन्होंने चुन–चुन कर देश भक्त नागरिकों को सजाएं देनी शुरू कीं।

कुछ एक किस्म के हिन्दू मुसलमान जो उस समय के माल दार तबके में शुमार किए जाते थे वे अंग्रेजों के सहयोगी रहे थे। ऐसे ही एक सिकन्द्राबाद के रईस काजी कमालुद्दीन वहां के एक और रईस मुंशी लक्ष्मण स्वरूप तथा एक वकील शिवबंस राय यह तीन शख्स थे। जिन्होंने मुनसिफा सिकन्द्राबाद की अदालत में क्रांतिकारी देश भक्तों के खिलाफ गवाही और बयान दिए थे।

यह सभी बयान गदर–बस्ता बुलन्दशहर में मौजूद है। कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी, नई दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा इलाहाबाद के रिकार्ड रूम में उस वक्त के पुराने अखबार, कागजात, गुप्त सैन्य रिपोर्ट तथा अंग्रेजों द्वारा देश भक्तों पर चलाए गए मुकदमों की फाइलों से यह सामग्री मिलती है। उसी समय की तीन गवाहियां यहां पेश की जा रही हैं।

काजी कमालुद्दीन ने अपने बयान में उस महाक्रांति को लूटमार बताया और कहा कि 'मेरठ में गदर शुरू होते ही १२ मई को बद अमनी शुरू हो गई थी। सर्वप्रथम चीती मसोता, और देवटा के गुर्जरों ने बुलन्दशहर पर हमला किया।

खगुआबास के लोग जैसे सिम्भा और 'राम सहाय' तथा प्रेमपुर के नवल ने जमादार हिम्मत के साथ हमला किया।

इसके बाद चीती देवटा तिल बेगमपुर और दादरी में गुर्जरों ने पंचायतें बुलाई जिसमें अंग्रेजी राज की सारी व्यवस्था को चोपट कर देने का संकल्प लिया गया।

तय हुआ कि अंग्रेजों के समर्थक घरों के चौखट और दालान तक उखाड़ लाए जाएं। उन्हीं दिनों मालागढ़ का एक नागरिक विद्रोही वलीदादखान दिल्ली के बादशाह से दोआब की सुबेदारी ले आया। (यानी अंग्रेज राज को नकारते हुए यह बादशाह की तरफ से सूबेदार नियुक्त हो गया)

उसने दादरी में रूककर सभी से इस विद्रोह में शामिल होने की अपील की कि सभी देहाती घर से बाहर निकल आएं और लूटमार मचा दें शांति व्यवस्था को पंगु बना दें अंग्रेजों के दफ्तरों और बंगलों को जला डालें और सड़कों पर फिरंगियों और उनके नौकरों का निकलना दूभर कर दें।

काजी ने अपने आपको इस मारधाड़ से अलग करते हुए बयान में कहा कि

चारों तरफ उपद्रव शुरू हो गए और मैं अपनी संपत्ति छोड़कर गांव चंदेरू में चला गया था। क्योंकि हम जैसे लोगों के बचने का दूसरा मार्ग नहीं बचा था।

काजी कमालुद्दीन ने १२ मई १८५७ को सिकन्द्राबाद में हुई लूट मार को इस तरह बयान किया है कि १२ नई से ही इस इलाके में बदअमनी शुरू हो गई थी। १० मई को मेरठ से बगावत शुरू होते ही राह रास्तों और सड़कों पर लूटमार होने लगी थी।

अतः सिकन्द्राबाद के लोग डरे हुए थे उन्हें अपनी लूट होने का डर था फिर भी उन्होंने अपने मुहल्लों और घरों की हिफाजत के लिए गुर्जर चौकीदार तैनात किये। सरकार ने भी तहसील की हिफाजत के लिए गुर्जरों को सवार चपरासी भर्ती किया। ११ मई के दोपहर बारह बजे पूर्व दिशा से एक फौज शहर में घुसने लगी थी। इस फौज ने अंग्रेजों से विद्रोह कर दिया था। उसके आते ही तहसील और कोतवाली की सारी व्यवस्था चौपट हो गई।

गुर्जर चौकीदार और सवार तो फौरन भाग गए (यानी अंग्रेजी सरकार के खिलाफ हो गए) उसी रात चीती, दोला, और मसोता आदि गांवों के गुर्जरों ने बुलन्दशहर पर हमला किया।

इसके बाद सवेरा होते ही (यानी १२ मई को) खगुआ बास वगैरा के गुर्जरों ने तहसील पर हमला किया। झगड़े में एक दो नवयुवक मारे भी गए तब उन्हें बहुत गुस्सा आया और आसपास के कितने ही गूर्जर भारी तादाद में शहर पर चढ़ आए व लूट मार मचाने पर आमादा थे। अब हालात ऐसे बने कि 'मेहपे' हर्नावती आदि और भी अन्य गांवों के गुर्जर एक साथ हुजूम लगाकर इकट्ठे हो गए। १३ मई को उन्होंने गिरूआ लोगो को भी अपने साथ बुला लिया। अब सब ने मिलकर गद्दीवाला में आग लगा दी और बाजार कलां तथा गंज को लूटने लगे। सिकन्द्राबाद गंज में खांड से भरी खडी ३ गाड़ियां भी लूट ली गई। ऐसा करने में शहर के गूजर चौकीदार खगुआबास के सिम्भा तथा राम सहाय आदि ग्रामीण और प्रेमपुर के नवल आदि निवासी शामिल थे।

इस झगड़े में सत्तर–अस्सी गुर्जर लड़ते हुए मारे गए। मरे हुए लोगों में कुछ गिरूआ भी थे। शहर के भी तीन चार व्यक्ति मरे। रिसालदार करीम बख्श के भी पैर में गोली लगी और वह घायल हो गया। मोटे रूप में विदेशी अंग्रेजी सरकार से सीधी जनता की लड़ाई का यह पहला अवसर था। एक तरफ गोरे उनके सिपाही चौकीदार 'थानेदार' 'तहसीलदार' थे तो दूसरी तरफ काली पलटन से भागे हिन्दुस्तानी फौजी तथा गुर्जर थे। मई क्रांति की यह पहली घटना थी जिसे ग्रामीण वीरों ने अंग्रेजों की सत्ता को ललकारा था।

काजी कमालुद्दीन के बयान से यह बात तो साफ तौर से सामने आ ही जाती है

कि १८५७ के उन हालात में तमाम गुर्जर चाहे वह सरकारी नौकर ही थे अंग्रेजी सरकार के खिलाफ जंग में कूद गए थे। लेकिन दीगर कौमों के सिर्फ वही लोग थे जो खेती आदि से जुड़े हुए थे लेकिन मालदार तबके के लोगों ने खुलकर अंग्रेजों का साथ दिया था। उस वक्त अगर तमाम हिन्दुस्तानी अगर सरकार के खिलाफ ो जाते तो उसी समय देश आजाद हो सकता था।

मुंशी लक्ष्मण स्वरूप की गवाही

सिकंदराबाद के मुंशी लक्ष्मण स्वरूप का १८५७ में क्रांतिकारियों के खिलाफ दिया गया ब्यान जो कि बुलन्दशहर गदर बस्ते में मौजूद है। यह शख्स अंग्रेजों की तरफ से सरकारी गवाह था। अपने दस्तखती बयान में साफ लिखा है कि

मेरठ में बगावत की चिंगारी उठते ही तुरंत सभी सड़कों पर गांववासियों ने सरकारी डाक व्यवस्था को दरहम बरहम कर दिया और टेलीग्राफ के तार काट कर खम्भे गिरा दिए गए।

दादरी के आसपास के गांवों में सबसे अधिक गड़बड़ी थीं। यहां तक कि गौरी फौज का हाकिम 'मि. टर्नबुल' जब अपनी पलटन के साथ विरोध के दमन के लिए आया तो अहमान गुजर का बेटा जो मेरठ से गदर करके भाग आया था। अपने हथियार लेकर ग्रामीणों की टोली के साथ सामने अड़ गया तथा लड़ा और मारा गया। बढपुरा में ही निश्चल भारती सन्यासी का चेला लक्ष्मण भारती ने भी मि. टर्नबुल से लड़ाई लड़ी और मारा गया।

रामपुर में भी गुर्जरों से लड़ाई हुई। काफी गुर्जरों को घायल हालत में पकड़कर जेल में डाल दिया गया। रास्ते में राजपुर कलां के लोगों ने उन्हें छुड़ाने की सशक्त कोशिश की मगर असफल रहे।

दादरी कठेहरा के गुर्जर नरेश राव उमराव सिंह ने जिसने स्वयं को स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया था तथा अट्टा और गुहना आदि कई गांवों के लोगों ने 'चीती' में पंचायत बुलाई और सब को साथ लेकर अंग्रेजों पर हमला किया सरकारी जेल तोड़ डाली और सारे कैदी छुड़ा लिए।

इन ग्रामीणों ने बुलन्दशहर के अंग्रेजों के बंगले दफ्तर कचेहरियां व तहसील जला डाली। खजाना लूट लिया और सर्वत्र लूटमार कर व्यवस्था को ही नष्ट कर दिया। खगुआ बास के मेहताब का बेटा इसी लड़ाई में मारा गया। नगला नैन सुख के झन्डु जमींदार का भाई साहिब सिंह भी इसी लड़ाई में मारा गया।

महेपा भोरा और वेर तक के ६००० लोगों ने गुर्जरों के साथ मिलकर सरकार की बरबादी में भाग लिया।

उन्हीं दिनों मालागढ़ का रईस नवाब वलीदाद खान बादशाह से दोआब की सूबेदारी प्राप्त कर लाया और वह अंग्रेजी राज की समाप्ति पर गंगा जमना के बीच बसे सारे भू–भाग का प्रशासक बना। वह दादरी में विशन सिंह भगवत सिंह एवं उमराव सिंह से मिला और अंग्रेजी सरकार के खिलाफ योजना रची।

खगुआबास के सभी लोग नगला नैनसुख के जमीदार झंडु आदि सभी गुर्जर गांवों में गए और पगड़ी उतारकर सबसे अनुरोध किया कि इस जंग में अंग्रेजों के खिलाफ सभी शामिल हों। ये सब विद्रोही इतने अधिक हो गए कि कोई भी उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। मैंने सुना था कि लोहारली के जमींदार मजलिस बील के रूपराम और हरदेव कटेहरा के उमराव सिंह मसोता के इन्दर ओर भोलू खगुआबास के भोरा सांवली के मेदा और बस्ती हिर्देपुर के मुल्की नगला चमरू के जमींदार सेंतली के मंगनी जमींदार नगला नैनसुख के झंडु चिटहड़ा के फत्तेगुजर महेपा के देवी सिंह तिलबेगमपुर के चौधरी पीरबख्शखान आदि इस विद्रोह के नेता (रिंग लीडर) थे।

जाहिर है उपरोक्त नाम उन शहीदों के भी हैं जिन्हें बाद में अंग्रेजों ने फांसियां दीं। काले आम पर लटकाए गए इन देश भक्तों में उपरोक्त अमर शहीद भी शामिल थे। यह एक छोटी सी सूची उन अमर शहीदों की है जो स्वतंत्रता संग्राम की आहुती बने

अंग्रेजी सेना किसी भी दिशा में आगे बढ़ती और गांवों में आग लगा देती

उस वक्त के अंग्रेजों के गुप्त दस्तावेजों के अनुसार २० सितंबर १८५७ को कर्नल ग्रीथेड ने दादरी के आसपास के गांवों में आग लगवा दी थी।

तत्कालीन कलेक्टर साप्टे को बुलन्दशहर छोड़कर मेरठ में शरण लेनी पड़ी थी। बाद में उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा था मेरठ में गदर होते ही गूर्जरों के सारे गांव बागी हो गए कटेहरा उमराव सिंह ने तो अपने को राजा ही घोषित कर दिया और दिल्ली के बादशाह से संबंध स्थापित कर लिये। बाद में उमराव सिंह और सुरजीत सिंह दोनों ने ही मातृभूमि की बली वेदी पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। उनकी भी सम्पत्ति अंग्रेजों ने जब्त कर ली थी।

१८५७ और १८५८ के दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि मालागढ़ के वीर जवान वलीदाद खान ने दिल्ली के बादशाह से सूबेदार दोआब का पद प्राप्त करने के बाद दादरी में पड़ाव डाला था और उसी ने यहां के गूर्जरों को भड़काया था। तथा अंग्रेजी राज को नष्ट करने का अनुरोध और आग्रह किया था।

तत्कालीन पत्रों की जुबानी गदर 1857 की कहानी

१८५७ के दिनों में जो समाचार पत्र निकले थे उनकी फाइलें राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता में आज भी सुरक्षित हैं। गाजियाबाद इतिहास सनिति ने उन पत्रों का अध्ययन कर संबंधित जानकारी संग्रहीत की है। उनमें चंद यहां पेश है पहला पत्र दि ढाका न्यूज २३ मई सन् १८५७ का अंक है। इसमें 'दि इंगलिश मेन' के हवाले से यह समाचार छापा था।

तृतीय अश्वारोही सेना की एक ब्रिगेड ने मेरठ और दिल्ली के बीच की सड़क पर कब्जा कर रखा है। मगर दिल्ली पर विद्रोहियों का कब्जा है।

दि फ्रेड ऑफ इंडिया ने २१ मई सन् १८५७ के अंक में यह समाचार तृतीय अश्वारोही पलटन ने मेरठ दिल्ली रोड पर नियंत्रण कर लिया है। इस समय वह हिन्डन पुल पर तैनात है। हापुड़ ओर मेरठ के बीच के सभी गांव अब पूरी तरह से विद्रोहियों से मिल गए हैं। हर सड़क पर हमारी पत्र व्यवस्था संचार व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई है। हमारी सरकार और यात्रियों के साथ भी दुर्व्यवहार किया जा रहा है। ज्यादातर विद्रोही आगरे की ओर बढ़ गए हैं।

दि फ्रैड आफ इंडिया ने अपने ३० जून १८५७ के अंक में पुनः यह छापा था कि पूना आब्जर्वर की खबर है कि पूरा बुलन्दशहर जिला फिर से विद्रोहियों के हाथों में पहुंच गया है।

दि हिन्दू पैट्रियट ने ६ दिसंबर १८५७ के अंक में चौहान रानी पर एक बड़ी खबर छापी थी।

दि हारकारू के एक संवाददाता का कहना है कि अनूपशहर की चौहान रानी जिसने राजा प्रताप चन्द सिंह की रियासत पर कब्जा कर लिया था। सरकारी कचहरी को लूट लिया था। अपनी आजादी की बाकायदा घोषणा कराई थी उसको सरकार ने छमादान दे दिया है।

अंग्रेजी सरकार का हथियार जब्ती का प्रयास

उन दिनों १८५७ की महाक्रांति से डरे अंग्रेजों ने जनता को निःशस्त्र करने का तरीका भी अपनाया था और हर नागरिक के हथियार जब्त कराए गए थे।

दि बंगाल हरकारू 'इंडिया गजट' और हिन्दू पेट्रियेट में इस प्रकार की खबरें मिलती हैं। समाचार सोमवार १२ जुलाई १८५७ सिर्फ इस क्षेत्र में १२० हजार शस्त्रास्त्रों की बरामदगी हुई है। जहां अपराध करने के इतने अधिक साधन मौजूद हो वहां हमारी पुलिस कर ही क्या सकती है।

दिल्ली गजट में छापा था कि उत्तर प्रांतों में आम लोगों को निःशस्त्र करने की प्रक्रिया में सिर्फ इस इलाके में छावनी और शहर को मिलाकर एक लाख बीस हजार हथियार पकड़े जा चुके हैं और प्रतिदिन ढेरों हथियार बरामद हो रहे हैं।

(गाजियाबाद का इतिहास–वह तीस मई पृष्ठ १३)

1857 की कहानी कुंवर लक्ष्मण सिंह की जुबानी

१८५७ की आजादी की जंग (गदर) के १७ वर्ष बाद यानी १८७४ में बुलन्दशहर के एक डिप्टी कलेक्टर कुंवर लक्ष्मण सिंह ने इस वाकये को कलम बंद किया था। कि १८५७ के गदर में खुद राव रोशन सिंह और उनके बेटों और भाईयों ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत का झंडा उठाया था। आखिर में उस खानदान की तमाम चल अचल संपत्ति जो भी उनके पास थी अंग्रेजी हुकूमत ने जब्त कर ली और राव रोशन सिंह व उनके दोनो बेटों राव विशन सिंह और भगवंत सिंह को सजाए मौत दे दी गई।

डिप्टी कलेक्टर ने दादरी इलाके के और भी ग्यारह गूजरों को फांसी पर लटकाए जाने का भी तजकिरा किया है। इनके अलावा पांच और नागरी गूजरों को सजाए मौत दी गई।

दनकौर के आसपास के गांवों में रहने वाले नागर गूजरों ने भी १८५७ की बगावत में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था इस के लिए उनके पांच नेताओं को भी फांसी की सजा दी गई थी। १. अट्टा गांव के इन्द्र सिंह २. जुनेदपुर के दर्याब सिंह ३. राजपुर के सुरजीत सिंह ४. अटाव के नथासिंह ५. गुनापुर के राम बख्श।

(गाजियाबाद का इतिहास–वह तीस मई प्र. २६)

लेखक



सूफी मो0 यमीन 'दादरवी' तंवर